सफलता के तीन साधन

- श्रीराम शर्मा आचार्य

सफलता के सात सूत्र-साधन

लेखक
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : १०.०० रुपये

जीवन में सफलता पाने के जितने साधन बतलाए गए हैं, उनमें विद्वानों ने इन सात साधनों को प्रमुख स्थान दिया है—परिश्रम एवं पुरुषार्थ, आत्म विश्वास एवं आत्मनिर्भरता, जिज्ञासा एवं लगन, त्याग एवं बलिदान, स्नेह एवं सहानुभूति, साहस एवं निर्भयता, प्रसन्नता एवं मानसिक संतुलन। जो मनुष्य अपने में इन सात साधनों का समावेश कर लेता है, वह किसी भी स्थिति का क्यों न हों, अपनी वांछित सफलता का अवश्य वरण कर लेता है।

सफलता के लिए क्या करें ?
क्या न करें ?

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि वह जीवन में उच्च स्थान प्राप्त करे। लोग बड़ी सफलताओं के स्वप्न देखते हैं। बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं। अधिकांश लोग जीवन के बाह्य क्षेत्र में नाम, बड़ाई, प्रतिष्ठा, श्री, समृद्धि, उच्चपद आदि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। थोड़े-बहुत अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं। इनमें भी बहुत कम इन विभूतियों, समृद्धियों के स्थायी सुख को भोग पाते हैं।

स्वामी रामतीर्थ संन्यास लेने से पूर्व एक कालेज के प्रोफेसर थे। एक दिन बच्चों के मानसिक स्तर की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने बोर्ड पर एक लकीर खींच दी और विद्यार्थियों से कहा—"इसे बिना मिटाए ही छोटा कर दो।" एक विद्यार्थी उठा किंतु वह प्रश्न के मर्म को नहीं समझ सका उसने रेखा को मिटाकर छोटी करने का प्रयत्न किया। इस पर स्वामीजी ने उस बच्चे को रोका और प्रश्न को दुहराया। सभी बच्चे बड़े असमंजस में पड़ गए। थोड़े समय में ही एक लड़का उठा और उसने उस रेखा के पास ही एक बड़ी रेखा खींच दी। प्रोफेसर साहब की खींची हुई रेखा अपने आप छोटी हो गई। उस विद्यार्थी की बुद्धि की सराहना करते हुए स्वामीजी ने कहा—"विद्यार्थियो ! इससे आपको शिक्षा मिलती है कि दुनियाँ में बड़ा बनने के लिए किसी को मिटाने से नहीं वरन् बड़े बनने के रचनात्मक प्रयासों से ही सफलता मिलती है। बड़े काम करके बड़प्पन पाया जा सकता है।"

जो लोग दूसरों को मिटाकर, दूसरों को नुकसान पहुँचाकर, उनकी नुक्ताचीनी करके बड़े बनने का स्वप्न देखते हैं, उनका असफल होना निश्चित है। यदि ऐसे व्यक्तियों को प्रारंभिक दौर में

कुछ सफलता मिल भी जाए तो अंततः उन्हें असफल ही होना पड़ेगा, क्योंकि सफलता का नियम धनात्मक है, ऋणात्मक नहीं। संत विनोवा जी के शब्दों में सफलता के सिद्धांत की व्याख्या सहज ही समझी जा सकती है। उन्होंने कहा है, "पड़ौसी के पास सात सेर ताकत है और मेरे पास दस सेर। यदि दोनों परस्पर टकराएँगे तो परिणाम में १० – ७ = ३ सेर ताकत ही बच रहेगी। दोनों पक्षों को हानि ही हानि होगी। दूसरी स्थिति में यदि मिलकर श्रम किया जाएगा तो १० + ७ = १७ सेर की ताकत पैदा होगी, जिससे अधिक मात्रा में सफलता अर्जित की जा सकेगी। मेरे दो हाथ और आपके दो हाथ मिलकर २ + २ = ४ होते हैं, किंतु जब मिलकर परस्पर टकराएँगे तो २ – २ = ० नतीजा शून्य ही निकलेगा।

जब लोग दूसरों की गर्दन काटकर स्वयं पनपने की कोशिश करते हैं, दूसरे के बढ़ते हुए पैरों को खींचकर उनको गिराकर आगे बढ़ने के स्वप्न देखते हैं, दूसरों का खून चूसकर अपना घर बसाना चाहते हैं, दूसरों के सुख छीनकर स्वयं सुखी बनना चाहते हैं तो वहाँ इंसानियत का नहीं शैतानियत का नियम लागू हो जाता है, जिसके परिणाम अंततः प्रतिकूल दुःखप्रद ही मिलेंगे। इस अमानवीयता के बर्बर नियम के फलस्वरूप धरती पर पतन, असफलता, विनाश की कब्रें पद-पद पर बनी हुई हैं और किसी भी क्षण मनुष्य अपने उन्माद के साथ उनमें सदा के लिए सो जाएगा। दूसरों को उजाड़ने के प्रयत्न में मनुष्य स्वयं ही उजड़ जाता है, दूसरों का गला काटने वालों को स्वयं ही अपना गला कटाने को मजबूर होना पड़ता है। दूसरों के विनाश, असफलता, पतन के स्वप्न देखने वालों के जीवन में ही वह दृश्य उपस्थित हो जाता है। मानवता का लंबा-चौड़ा इतिहास इसका साक्षी है। जब-जब उक्त उन्माद से पागल मनुष्य ने जन जीवन पर कहर ढाए तो वह स्वयं ही नेस्तानाबूद हो गया। रावण, वाणासुर, कंस, दुर्योधन, हिटलर, मुसोलिनी, चंगेज खाँ, नादिरशाह जैसे शक्ति संपन्न कुशल नीतिज्ञ चतुर व्यक्तियों को भी

हमेशा के लिए नष्ट हो जाना पड़ा। इतिहास में सहज ही ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जाते हैं।

किसी भी वृक्ष को उगने के लिए प्रकृति ने मिट्टी, जल, वायु, प्रकाश आदि की पर्याप्त व्यवस्था सृष्टि में कर रखी है। साथ ही विभिन्न बीजों में उनके गुण धर्म प्रतिष्ठित कर दिए हैं, जो पौधों की निश्चित अवस्था में चलकर प्रकट होते ही हैं। इसके अनुसार बोया गया बबूल का बीज कालांतर में काँटेदार बड़ा वृक्ष बनेगा, आम का बीज बोने का प्रतिफल विशाल वृक्ष, ठंडी छाया और मधुर फलों के रूप में मिलेगा। यही बात संसार के अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती है। आग जलाने पर ज्वाला और ताप, प्रकाश ही पैदा होंगे, ठंड नहीं मिल सकती। पानी से गीलापन दूर नहीं किया जा सकता। विश्व विधायक ने विभिन्न कर्म और उनके फल निश्चित कर दिए हैं जिससे बचना असंभव है।

बुराई का परिणाम बुरा ही होगा, पाप का अंत पाप में ही होता है। ईर्ष्या-द्वेष, दूसरों को हानि पहुँचाकर, दूसरों का अहित सोचने से अपने ही बुरे का श्रीगणेश हो जाता है। मन-वचन-कर्म से उद्‌भूत इस तरह के विजातीय सूक्ष्म परमाणु जहाँ होंगे पहले वहीं हमला करेंगे। यही कारण है कि दूसरों को हानि पहुँचाने वाले भय, आशंका, आक्रोश, अशांति, उद्विग्नता एवं मानसिक उत्तेजना से ग्रस्त होकर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असफल होने लगते हैं। वातावरण उनके विपरीत बन जाता है। उन्हें किसी की भी सद्‌भावना, हार्दिक सहयोग नहीं मिलता। दबाव भय या चापलूसी के रूप में भले ही लोग उनका समर्थन करें किंतु उसमें सच्चाई नहीं होती और इन सबके कारण जीवन के हर मोर्चे पर मनुष्य को असफलता का सामना करना पड़ता है।

यह एक आम शिकायत है कि "सच्चाई, न्याय, ईमानदारी के मार्ग पर चलकर लोगों को नुकसान उठाने पड़ते हैं। ऐसे लोग सदैव घाटे में रहते हैं असफल होते हैं। दूसरे लोग जो बदमाशी, अन्याय,

अनीति, बेईमानी का रास्ता अपनाते हैं वे सदैव फायदा उठाते हैं—लाभ में रहते हैं, जीवन में सफल होते हैं।"

दूसरी बात यह है कि अच्छाई के मार्ग पर चलकर भी मनुष्य यदि अपने क्षेत्र में पर्याप्त श्रम, उद्योग नहीं करता तो उसकी सफलता सदैव अनिश्चित ही रहेगी, बल्कि असफलता ही मिलेगी। आम के गुण धर्मों से प्रभावित होकर उसका बीज बो देने भर से काम नहीं चलता। बीज बो देने के बाद भी आवश्यक खाद, पानी, सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना पड़ता है और फिर लंबे समय के धैर्य की आवश्यकता होती है, क्योंकि उपयोगी महत्त्वपूर्ण फल देर से ही मिलते हैं। इस बीच में भी आने वाले तूफान, आँधी, विघ्न बाग को उजाड़ देने वाले पशु-पक्षियों का आक्रमण भी फलप्राप्ति में कम खतरनाक नहीं होते। यदि कोई मनुष्य यह सब तो करे नहीं और आम पाने की आकांक्षा रखे तो उसकी आशा कभी पूरी नहीं होगी और इस असफलता का कारण आम बोने का नहीं अपितु मनुष्य के प्रयत्न का अभाव माना जाएगा।

दूसरी ओर बबूल के पेड़ लगाने में, झाड़ियों की खेती करने में तो विशेष श्रम भी नहीं करना पड़ता, थोड़े ही समय में खेती लहलहा उठेगी, यह निश्चित है। न पानी देना पड़ेगा न और कुछ। अविवेकी, अनजान लोग, इस हरियाली को देखकर अपने अंकुरित हुए आमों के बगीचे को छोड़ सकते हैं किंतु वे यह नहीं जानते कि हरियाली के भविष्य में असंख्यों भयंकर कांटों का अस्तित्व छिपा है।

चोर, डकैत, गुंडे, बदमाश बुरे मार्ग पर चलकर जो कुछ सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं तो इसके मूल में उनकी कार्य-कुशलता, बुद्धिमानी, लगनपूर्ण प्रयत्न, उत्साह आदि ही होते हैं। यदि अच्छे रास्ते पर चलकर इन बातों को अपनाया जाए तो सफलता और सत्परिणाम उसी तरह निश्चित हैं जैसे किवाड़ खोल देने पर प्रकाश का आगमन। सच्ची सफलता के लिए अच्छाई, नैतिक आदर्शों से प्रेरित होकर सबके हित में अपना हित, सबकी भलाई

और उन्नति हो, ऐसे कामों में लगा रहना आवश्यक है। ऐसे लोगों को बाह्य दृष्टि से होने वाली असफलता भी उनके प्रत्येक रचनात्मक प्रयत्न में प्रत्येक कदम पर सफलता ही है। दरअसल इस मार्ग के पथिकों के कोष में तो असफलता नाम का शब्द ही नहीं होता।

अपने आदर्शों के प्रति दृढ़ निष्ठावान सर्वस्व लुट जाने पर भी शिकायत न करने वाले ही उच्च स्वत्वों के महत्त्व को समझते हैं। वस्तुतः बाह्य सफलता असफलताओं की कसौटी पर आदर्शों का परखना उनके प्रति सच्ची निष्ठा, दृढ़ता का अभाव ही है। यह कसौटी सही नहीं है।

सफलता की सही कसौटी

संसार में प्रायः लोग विजय-पराजय, सफलता-असफलता को स्थूल उपलब्धियों से ही नापते हैं। किसी ने किसी प्रकार धन-दौलत, मान-सम्मान अथवा नाम-धाम पा लिया है स्थूल बुद्धि वाले उसे सफल ही मान लेते हैं। वे यह नहीं देख पाते कि इसने जो यह वैभव-विभूति प्राप्त की है, उसके उपायों एवं साधनों के औचित्य पर ध्यान नहीं रखा। जबकि उपायों का अनौचित्य उसकी बहुत बड़ी नैतिक पराजय है।

इसके विपरीत जो व्यक्ति ईमानदारी से प्रयत्न करते हुए भी स्थूल उपलब्धियों को संयोग अथवा अन्य हेतुओं-वश नहीं पा सकते उन्हें सामान्य बुद्धि वाले लोग असफल ही मानते हैं, जबकि अनुपलब्धि को स्वीकार करके भी ईमानदार प्रयत्नों में लगे रहने की सफलता उसकी बहुत बड़ी विजय है।

सफलता-असफलता तथा विजय-पराजय के विषय में इस प्रकार की धारणा रखने वाले व्यक्ति स्थूल दृष्टि से स्थूल उपलब्धियों को ही देख पाते हैं और उनसे ही प्रसन्न एवं प्रभावित हुआ करते हैं। ऐसे लोग पुरुषार्थ एवं कर्मशीलता का मान-सम्मान करना नहीं जानते। निश्चय ही ऐसे लोग भौतिक विभूतियों के अविवेकशील भक्त होते हैं।

उनकी दृष्टि में भौतिक उपलब्धियों के सिवाय मनुष्य के प्रयत्न एवं पुरुषार्थ का कोई मूल्य-महत्त्व नहीं होता।

तत्त्वदर्शी बुद्धिमानों का दृष्टिकोण इन स्थूलवादियों से सहमत नहीं होता वे सफलता एवं विजय का मापदंड पुरुषार्थ एवं प्रयत्न को ही मानते हैं। बिना परिश्रम अथवा पुरुषार्थ के विरासत, संयोग अथवा प्रारब्धवश नाम-धाम अथवा धन-दौलत पा जाने वालों को वे सफल व्यक्तियों की श्रेणी में नहीं रखते और गर्हित उपायों का अवलंबन लेकर सफल होने वालों की ओर तो वे उतना ही ध्यान नहीं देते, जितना कि प्रारब्ध-प्रसन्न व्यक्तियों की ओर। उनका विश्वास होता है कि सफलता अथवा विजय का संबंध मनुष्य के पुरुषार्थ एवं परिश्रम से ही होता है उपलब्धियों से नहीं। जिनको किन्हीं उपलब्धियों के लिए परिश्रम, प्रयत्न, पुरुषार्थ एवं संघर्ष न करना पड़ा हो तो सफलता का श्रेय उनकी किस विशेषता से, किस गुण से जोड़ा जाएगा। उपलब्धियाँ स्वयं में कोई सफलता नहीं है। यह तो सफलता की परिचायक प्रतीक मात्र होती हैं। प्रतिद्वन्द्वी के 'पस्त-हिम्मत' होने के कारण कोई पहलवान अखाड़े में उतरे बिना ही विजयी घोषित नहीं माना जा सकता। उसकी विजय की घोषणा तो वास्तव में प्रतिद्वंद्वी की साहसहीनता की सूचना होती है। इस प्रकार की घटना में यह घोषणा प्रस्तुत पक्ष की विजय ही नहीं, निरस्त पक्ष के पराजय की होनी चाहिए।

पुरुषार्थ में विश्वास रखने वाले सच्चे कर्मवीर जीवन में कभी असफल अथवा परास्त नहीं होते। उनकी पराजय तो तब ही कही जा सकती है, जब वे एक बार की सफलता से निराश होकर निष्क्रिय हो जाएँ और प्रयत्न के प्रति हथियार डाल दें। सच्चा कर्मवीर एक क्या हजार बार की असफलता से भी पराजय स्वीकार नहीं करता। जीवन के अंतिम क्षण तक उपलब्धियों का मुख न देख सकने वाले प्रयत्न निरत कर्मवीरों को असफल अथवा पराजित कौन, किस मुँह से, कहने का साहस कर सकता है ?

इतिहास ऐसे न जाने कितने कर्मवीरों की गौरव-गाथा से भरा पड़ा है, जो जीवन-संग्राम में अनेक बार हारकर भी नहीं हारे, और ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है कि विजयी होने पर भी जिनका नाम पराजितों की सूची में ही लिखा गया। राणा प्रताप, पोरस तथा पृथ्वीराज चौहान ऐसे ही कर्मवीरों में से हैं, जो स्थूल रूप से हारकर भी नैतिक रूप से पराजित नहीं हुए। शृंखलाओं एवं संकटों के बीच भी उन्होंने अपने को पराजित स्वीकार नहीं किया। जीवन का अंतिम अणु-कण संघर्ष के दाव पर लगा देने के बाद भी विजय न पा सकने वाले यह वीर आज भी विजयी व्यक्तियों के साथ ही गिने जाते हैं। उनकी परिस्थितियाँ अवश्य हारीं किंतु उनके प्रयत्न कभी पराजित न हुए। यही उनकी विजय है जिसे यशस्वी कर्मवीरों के अतिरिक्त साधन संपन्नता के बल पर संयोगिक विजय पाने वाले कर्महीन कायर कभी नहीं पा सकते।

अकबर, अशोक और अलाउद्दीन खिलजी जैसे विजयी उन व्यक्तियों में से हैं, जिनकी जीत भी आज तक हार के साथ ही लिखी जाती है। कलिंग का श्मशान बन जाना एक विजय थी और अशोक का नगर पर अधिकार कर लेना एक पराजय। पद्मनी का जल जाना, भीमसिंह और गोरा बादल का जौहर कर डालना एक विजय थी और चित्तौड़ पर खिलजी का अधिकार एक पराजय थी। वन-वन फिरकर घास की रोटी खाने वाले प्रताप की आपत्ति एक विजय और मेवाड़ पर अकबर का झंडा फहराना एक पराजय। यह ऐसी पराजय थी जिसे अकबर ने स्वयं स्वीकार किया था। जय-पराजय की इन गाथाओं में जीत-हार का मापदंड आदर्श, पुरुषार्थ, पराक्रम, साहस, धैर्य एवं प्रयत्न ही रहा है। राज्य अथवा नगरों पर अधिकार नहीं।

परिस्थितियों के सम्मुख घुटने न टेकने और सफलता के बाद दूने उत्साह से उठने वाले कभी भी परास्त नहीं कहे जा सकते फिर चाहे वे कभी स्थूल विजय के अधिकारी भले ही न बने हों। हारना वास्तव में वह है असफल उसे ही कहा जा सकता है, जो एक बार गिरकर उठने की हिम्मत खो देता है। एक बार की असफलता से

निराश होकर मैदान से हट जाता है। पिछली पराजय से पस्त-हिम्मत न होकर अगली सफलता के लिए प्रयत्न करने वालों की पिछली असफलताओं का सारा अपवाद स्वयं ही मिट जाया करता है। इसीलिए विजय का यशस्वी श्रेय लेने वाले फल के प्रति उत्सुक न रहकर प्रयत्न एवं पुरुषार्थ में ही लगे रहते हैं।

असफलताओं के आघात से निराश होकर बैठ रहना सबसे बड़ी कायरता है। असफलताओं की कसौटी पर ही मनुष्य के धैर्य, साहस तथा लगनशीलता की परख होती है। जो इस कसौटी पर खरा उतरता है, वही वास्तव में सच्चा पुरुषार्थी और अपने ध्येय का धनी होता है और ऐसे ही कर्मवीरों को विचारवान लोग असफल होने पर भी सफल ही मानते हैं। जीवन में निर्विरोध अथवा निरंतर सफलताओं की परंपरा गर्व-गौरव अथवा हर्षातिरेक का विषय नहीं है। असफलता का आघात पाए बिना मनुष्य पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं हो पाता। उसके मन, बुद्धि तथा आत्मा में कच्चापन बना रहता है। उसकी एकांगी विजय न तो सरस हो पाती है और न संतोषप्रद। परिश्रम के बादं विश्राम और कष्टों के बाद सुविधा की तरह ही सफलता का आनंद असफलता के बाद ही आता है। असफलता के अभाव में अनुभवों से रहित व्यक्ति दुनियाँ को ठीक से नहीं समझ पाता।

मनुष्य का निरंतर सफल होते जाना बहुत अधिक हितकर नहीं होता। ऐसी ही स्थिति में वह अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करने के बजाय प्रारब्ध पर भरोसा करने लगता है। उसे अपने प्रारब्ध पर अंधविश्वास हो जाता है और अपने को एक चमत्कारी व्यक्ति समझने लगता है। उसे सफलताओं में अति विश्वास हो जाने से अभिमान हो जाता है। प्रयत्न के प्रति उदासीन और अवरोधों के प्रति असावधान हो जाता है। एक साथ सफलताओं को पाते जाने से मनुष्य अंदर से इतना कमजोर हो जाता है कि जब कभी उसको सहसा असफलता का सामना करना पड़ जाता है तो वह एक दम निराश, निरापद तथा निष्क्रिय हो जाता है कि फिर उठ ही नहीं पाता। निरंतर सफल होते

रहने वाले व्यक्ति कभी-कभी आई हुई असफलता से इतने घबरा जाते हैं कि आत्महत्या तक कर बैठते हैं। असफलता से शून्य सफलता कभी भी निरापद नहीं होती।

असफलता अथवा पराजय से निराश एवं निष्क्रिय न होना तो एक नैतिक विजय है ही, साथ ही आगे चलकर उसकी असफलता निरंतर प्रयत्नशीलता एवं एकनिष्ठ लगन के बल पर स्थूल विजय में भी बदल जाती है। जो व्यक्ति अपने उद्देश्य के लिए यथासाध्य उद्योग में कमी नहीं रखता वह अवश्य ही अपने ध्येय में सफल हो जाता है। अब्राहम लिंकन अपने जीवन में हजारों बार असफल हुए, महात्मा गाँधी ने सैकड़ों बार असफलताओं का मुँह देखा, वैज्ञानिक अपनी खोजों के प्रयत्नों में न जाने कितनी बार असफल होते रहते हैं किंतु तब भी वे अपनी एकनिष्ठ लगन एवं निरंतर प्रयत्नरत रहने से अंततः अपने उद्देश्य में सफल ही हुए और होते जाते हैं। हुमायूँ अपना राज्य वापस लेने के प्रयत्न में इक्कीस बार हारा किंतु अंत में अपनी लगनशीलता एवं पुरुषार्थ के पुरस्कार स्वरूप उसने दिल्ली का राजसिंहासन पठानों से छीन ही लिया। सच्ची लगन तथा निर्मल उद्देश्य से किया हुआ प्रयत्न कभी निष्फल नहीं जाता।

मुमुक्षु साधक अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए अबाध प्रयत्न ही नहीं तप भी किया करते हैं। वे एक-दो वर्ष तक ही नहीं जन्म-जन्मांतरों तक अपने प्रयास में लगे रहते हैं और अंत में अपने पावन ध्येय को पा ही लेते हैं। जरा-जरा-सी सफलताओं से निराश होकर विरत प्रयत्न हो जाने वाले सुकुमार व्यक्ति को तपस्वी मुमुक्षुओं की दृढ़ता से शिक्षा लेनी चाहिए कि वे अपनी ध्येय पूर्ति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों में एक क्या अनेक जन्मों की असफलताओं को कोई महत्त्व नहीं देते।

संसार में ईसा, सुकरात, तुलसी, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि न जाने कितने महात्मा एवं महापुरुष ऐसे हुए हैं, जिनको जीवन भर असफलताओं, संकटों तथा विरोधों का सामना ही करना पड़ा किंतु वे

एक क्षण को भी न तो अपने ध्येय से विचलित हुए और न निराश ही। वे तन-मन से अपने प्रयत्न में निरंतर लगे ही रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि अपने जीवन के बाद संसार ने उन्हें परमात्मा के रूप में पूजा, उन्हें जीवन का आदर्श बनाया और उनके स्मारक स्थापित किए। उनके जीवन की पराजय जीवनोपरांत महान विजय में बदल गई।

किंतु पराजय से विजय और असफलता से सफलता का जन्म होता तभी है जब मनुष्य उनसे नई शिक्षा, नई स्फूर्ति, नया साहस और नया अनुभव लेकर आगे बढ़ता रहता है। जिसने असफलता को केवल असफलता समझकर छोड़ दिया उसकी उपेक्षा कर दी और उससे किसी शिक्षा का लाभ नहीं उठाया तो उसकी मूल्यवान असफलता मात्र असफलता बनकर ही रह जाती है, तब ऐसी असफलता का सफलता में अथवा पराजय का विजय में बदलना कठिन हो जाता है।

असफलता से निराश न हों

कार्यों का परिणाम मिलता है, यह एक ध्रुव सत्य है। कोई भी क्रिया प्रतिक्रिया से रहित नहीं है। जो कुछ किया जाता है उसका प्रतिफल भी अवश्य होता है पर यह प्रतिफल कब, कितनी मात्रा में, कैसा होगा उसका रूप ठीक तरह निश्चित नहीं किया जा सकता। यह बातें परिस्थितियों पर भी निर्भर रहती हैं। साइकिल चलाने में कितनी देर में कितनी दूर पहुँच जावेंगे, उसका एक उत्तर नहीं हो सकता, क्योंकि साथ में और भी कितनी ही बातों से इसका उत्तर संबधित है। सड़क खराब है या अच्छी ? हवा सामने की है या पीछे की ? चलाने वाले का स्वास्थ्य कैसा है ? साइकिल अच्छी हालत में है या खराब हालत में ? इन बातों की अनुकूलता प्रतिकूलता जानकर ही यह अनुमान किया जा सकता है कि यात्रा कितनी देर में पूरी होगी।

प्रयत्न और परिस्थितियाँ

हम जो सफलता चाहते हैं, जिसके लिए प्रयत्नशील हैं वह कामना कब तक पूरी हो जाएगी, इसका उत्तर सोचने से पूर्व अन्य परिस्थितियों को भुलाया नहीं जा सकता, अपना स्वभाव, सूझ-बूझ, श्रम-शीलता, योग्यता, दूसरों का सहयोग, सामाजिक परिस्थितियाँ, साधनों का अच्छा-बुरा होना, सिर पर लदे हुए तात्कालिक उत्तरदायित्व, प्रगति की गुंजायश, स्वास्थ्य आदि अनेक बातों से सफलता संबंधित रहती है और सब बातें सदा अपने अनुकूल ही नहीं रहतीं इसलिए केवल इसी आधार पर सफलता की आशा नहीं की जा सकतीं कि हमने प्रयत्न पूरा किया तो सफलता भी निश्चित रूप से नियत समय पर मिल ही जानी चाहिए।

एक विद्यार्थी बहुत परिश्रमी और ठीक प्रकार पढ़ने-लिखने वाला है और विद्याध्ययन में अपनी ओर से कुछ त्रुटि नहीं रहने देता पर परिस्थितियाँ यदि उसके प्रतिकूल रहती हैं तो परीक्षाफल संदिग्ध हो जाता है। स्वास्थ्य का यकायक बिगड़ जाना, घर में कोई आघात लगाने वाली शोक-संताप भरी दुर्घटना हो जाना, किसी कारण मन का खिन्न या क्षुभित रहना, अध्यापक का सुशिक्षित न होना, समय पर पुस्तक का न मिल सकना, बुरे साथियों द्वारा पढ़ाई के समय ध्यान बटाने वाला उच्छृंखल वातावरण बने रहना, घर से विद्यालय बहुत दूर होने पर चलते-चलते थक जाना, प्रश्न-पत्र में अप्रत्याशित विषयों का आ जाना, परीक्षक की असावधानी या कठोरता, परीक्षा काल में आकस्मिक उद्वेग आदि कितने ही कारण ऐसे हो सकते हैं जिनसे परिश्रमी और ठीक तरह पढ़ने वाले विद्यार्थी को भी असफलता का मुँह देखना पड़े।

इसी प्रकार सफलता के ऐसे कारण भी हो सकते हैं, जिनके कारण कम परिश्रम करने वाला छात्र भी उत्तीर्ण हो जाए। सुशिक्षित अध्यापक, प्रसन्नतादायक वातावरण, अच्छे साथी, हल्के प्रश्न-पत्र, उदार परीक्षक, सामयिक सूझ-बूझ, परीक्षा समय का वातावरण, पर्चे आउट होना या नकल आदि का अनैतिक लाभ आदि कितने ही

कारण ऐसे हो सकते हैं जिनके कारण ऐसे विद्यार्थी अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हों जिनके श्रम को देखते हुए असफलता की ही आशा की जाती थी।

यों श्रम का सत्परिणाम एक सुनिश्चित तथ्य है। मेहनत कभी भी बेकार नहीं जाती। उसका सुफल मिलता ही है। श्रमशील की योग्यता, प्रतिभा, क्षमता एवं सूझ-बूझ निरंतर बढ़ती ही जाती है और उसका लाभ प्रकारांतर से मिलता ही है। इसी प्रकार आलसी को कोई आकस्मिक सफलता मिल भी जाए तो उससे तात्कालिक प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है, पर उन विशेषताओं से वंचित ही रहना पड़ेगा जो कठोर श्रम और गहन अध्यवसाय के कारण अपने को प्राप्त हो सकती थीं। आजकल अनीति का बोल-बाला है। अनैतिक उपायों को काम में लाकर सफलता प्राप्त कर लेते हैं और नीति और मर्यादाओं का पालन करने वालों को उनके मुकाबले में पीछे रहना पड़ता है। ऐसी दशा में कई लोग जल्दी सफलता प्राप्त करने के लिए अनीति का मार्ग अपनाते हैं पर वहाँ भी अनिश्चितता है। हर चोर, लखपती कहाँ बन पाता है ? उनमें से भी कितनों को ही हाथ-पैर तुड़वा बैठने या जेल में चक्की पीसते-पीसते मरते रहने का दुर्भाग्य भुगतना पड़ता है। इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि बुराई पर उतारू हो जाने से सफलता अवश्य ही, थोड़े दिन में ही मिल जाएगी।

यदि श्रम का सत्परिणाम सुनिश्चित न होता तो कोई क्यों श्रमशीलता का कष्टसाध्य मार्ग अपनाता ? कृषि, व्यापार, उद्योग, शिल्प, शिक्षा आदि में करोड़ों आदमी निरंतर पूर्ण तत्परता के साथ लगे रहते हैं और प्रतिफल भी उनको मिलता ही है। किसान खेत से ही तो गुजारा करते हैं, कारखानों को लाभ होता ही है। विद्या प्राप्त करने पर अच्छी जीविका मिलती ही है। यदि ऐसा न होता तो सभी लोग अनिश्चित अनुभव करते और किसी भी कार्यपद्धति पर लोगों का मन न जमा, पर ऐसा है नहीं। यह सारा संसार एक नियत विधि व्यवस्था पर चल रहा है। पुरुषार्थी को विजय-लक्ष्मी वरण करती है

और अकर्मण्य के पल्ले दीनता, दरिद्रता बँधी रहती है। इस विधान पर विश्वास करके प्रत्येक व्यक्ति कार्य-संलग्न हो रहा है और कष्टसाध्य लगते हुए भी प्रयत्न में संलग्न रहता है।

इतना होते हुए भी अपवादों की कमी नहीं रहती, पुरुषार्थियों को असफलता और आलसियों को आकस्मिक लाभ की घटनाएँ भी घटित होती रहती हैं। यद्यपि ऐसा कम और कभी-कभी ही होता है पर होता अवश्य है। संख्या में थोड़ी रहने के कारण इन्हें अपवाद कहा जाता है। यह अपवाद भी कई बार मनुष्य के मन को विचलित और क्षुब्ध कर दिया करते हैं। जिन्हें ऐसी ही उल्टी परिस्थितियों से पाला पड़ा है, वे पुरुषार्थ की व्यर्थता और भाग्य के सर्वोपरि होने की बात सोचने लगते हैं। कई बार तो ऐसे लोग हतोत्साह और निराश होकर ऐसा भी सोचने लगते हैं कि "अपने बल-बूते कुछ बनने वाला नहीं है जो कुछ होना होगा, जब दिन फिरेंगे तभी कुछ लाभ होगा। हमारा हाथ-पैर पीटना है। तकदीर के आगे बेचारी तदबीर क्या कर सकती है ?"

ऐसा सोचना न तो उचित है और न आवश्यक। भाग्य भी पुरुषार्थ का ही साथ देता है। अकर्मण्य लोग आकस्मिक सुयोग किसी प्रकार प्राप्त भी कर लें तो देर तक उनका लाभ नहीं उठा सकते। क्षमता पर ही स्थिरता अवलंबित है। अयोग्य व्यक्ति जब कार्य क्षेत्र में उतरते हैं तो खोटे सिक्के की तरह अलग फेंक दिए जाते हैं। आकस्मिक सौभाग्य किसी अयोग्य को तो मिल सकता है। पर वह देर तक उसके पास टिका नहीं रह सकता। जिसने श्रम करके जो कमाया है, वही उसका सदुपयोग भी कर सकता है। 'माल मुफ्त दिले बेरहम' वाली कहावत के अनुसार अनायास प्राप्त हुई सफलता देर तक नहीं ठहरती वे किसी न किसी मार्ग से जल्दी ही विदा हो जाती हैं। अपव्यय की आदत उन्हें ही पड़ती है, जिन्हें बिना मेहनत की कमाई हाथ लगी है। फिजूलखर्ची और असावधानी बरतने से तो समुद्र का जल भी समाप्त हो सकता है। फिर छोटी-सी सफलताओं का टिके रहना तो संभव ही कैसे हो सकता है ?

हम अपवादों पर ध्यान दें। स्थिर व्यवस्था और विधान के प्रति आस्था रखें। कर्म तत्परतापूर्वक करें उसमें तनिक भी असावधानी न होने दें। पर सफलता के लिए उतावले न हों। अमुक समय तक, अमुक मात्रा में सफलता मिल ही जानी चाहिए यह कोई निश्चित नहीं कह सकता। परिस्थितियाँ और घटनाएँ उनमें विघ्न डाल सकती हैं और मंजिल तक पहुँचने में देर लग सकती है। बीच-बीच में कई अवसर असफलता के मिल सकते हैं। लंबा रास्ता लगातार चलते हुए कहाँ पार होता है ? बीच-बीच में रुकना भी तो पड़ता है। चलते रहने से मंजिल कटती है तो उसे प्रगति कह सकते हैं पर निरंतर चलना, निरंतर प्रगति भी कहाँ संभव है ? कुछ देर रुकना और सुस्ताना भी तो पड़ता है। जितनी देर रुके उतनी देर यही सोचते रहना उचित नहीं कि इस समय हमारा भाग्य साथ नहीं दे रहा है, प्रगति रुक रही है, सफलता नहीं मिल रही है। प्रगति की भाँति अवरोध भी प्रकृति का नियम है। दिन में काम करने के बाद रात को सोना भी तो पड़ता है।

अहंकार और असावधानी पर नियंत्रण रहे

हमें प्रत्येक पग पर सफलता ही मिले यह कोई आवश्यक बात नहीं। असफलता में जो आघात लगता है, उससे अधिक सावधानी बरतने और अधिक तत्परतापूर्वक श्रम करने की प्रेरणा मिलती है। भूल सुधारने का मौका भी इन्हीं झटकों से मिलता है अन्यथा लगातार सफलता के मद में उन्मत्त मनुष्य को "बादल या मकड़ी का जाला" कहलाने में भी देर नहीं लगती।

लक्ष्य को सोच-विचार कर नियत करना चाहिए और फिर उस पर दृढ़तापूर्वक चलते रहना चाहिए। मनुष्य का धर्म कर्त्तव्य मर्म करते रहना है। इसे न करने पर वह "कर्त्तव्य घात" के पास का भागी बनता है। इसलिए हर व्यक्ति को बिना एक क्षण भी गँवाए अपने जीवनोद्देश्य की प्राप्ति के लिए निर्धारित कर्त्तव्य पथ पर चलते रहना चाहिए। यह मान्यता सर्वथा सत्य है कि सत्कर्म का सत्परिणाम ही मिलता है। साथ ही यह भी मानकर चलना चाहिए कि हमारा हर

कदम सफलता और प्रगति के लिए ही नहीं होता। कितने ही कारण इस संसार में ऐसे मौजूद रहते हैं, जो प्रगति को रोकते हैं और जितनी जल्दी हम चाहते हैं, उतनी जल्दी सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। बाधाओं की मंजिलें पार करने में जो लोग अपने धैर्य और साहस का परिचय देते हैं, घबराने और असंतुलित नहीं होते, वे ही दृढ़ चरित्र और स्वस्थ मानस कहला सकने के अधिकारी होते हैं। धैर्य और साहस ही तो मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है। असफलता इसी विशेषता को परखने आया करती है और जो उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होता है, उसे इतना मनोबल देकर जाती है जिसके आधार पर उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा जा सके।

हमें सफलता के लिए शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए। पर असफलता के लिए भी जी में गुंजायश रखनी चाहिए। प्रगति के पथ पर चलने वाले हर व्यक्ति को इस धूप-छाँह का सामना करना पड़ा है। हर कदम सफलता से ही भरा मिले ऐसी आशा केवल बल बुद्धि वालों को शोभा देती है विवेकशीलों को नहीं। केवल सफलता की आशा करना और उसके न मिलने पर सिर धुनना अथवा निराश हो बैठना, ओछे, उथले और बचकाने स्वभाव का चिन्ह है। जिंदगी जीने की विद्या का एक महत्त्वपूर्ण पाठ यह है कि हम न छोटी-मोटी सफलताओं से हर्षोन्मत्त हों और न असफलताओं को देखकर हिम्मत हारें। दिन और रात की भाँति असफलताओं का चक्र भी चलते ही रहने वाला है। एक ही तरह की वस्तु सदा मिले यह असंभव आशा हमें आरंभ से ही नहीं करनी चाहिए और असफलता के लिए भी अपने कार्यक्रम में उचित गुंजायश रखनी चाहिए और उसका वैसा स्वागत करना चाहिए। जैसा सायंकालीन संध्या का करते हैं। प्रातःकाल की ऊषा भी उतनी ही सुन्दर होती है, जितनी सायंकाल की संध्या। सफलताओं में, सुख-सुविधाओं की जैसी आशा केंद्रित रहती है वैसी ही आत्म-सुधार की, धीर-वीर बनाने की प्रेरणा असफलता में भी सन्निहित है। वस्तुतः ये दोनों आपस में सगी बहनें हैं, कुशल-क्षेम पूछने और परस्पर मिलने अक्सर आया करती हैं।

इनके प्रेमालाप में हम बाधक क्यों बनें ? अपनी कर्त्तव्य-परायणता का आतिथ्य प्रस्तुत करते हुए इन दोनों का ही उचित स्वागत क्यों न किया करें ? सफलता के सूत्र-साधन जानें और अपनाएँ, किंतु असफलताओं के स्वागत को भी तत्पर रहें।

❐ ❐

सफलता के लिए आवश्यक सात साधन

ऐसे न जाने कितनी व्यवसायी, दुकानदार, मजदूर, कारीगर, अध्यापक व क्लर्क आदि काम करने वाले लोग देखने को मिलते हैं, जिन्होंने अपने काम अपने पद अथवा अपनी स्थिति में रंचमात्र भी उन्नति नहीं की। वे आज भी उसी स्थान, उसी दशा में घिस-घिस करते हुए पड़े हैं, जहाँ पर दस-बीस साल पहले थे। जबकि बहुत-से न जाने कहाँ से कहाँ जा पहुँचे हैं। इस उन्नति एवं अवनति के पीछे केवल एक ही कारण काम कर रहा होता है और वह है उन्नति करने की इच्छा-अनिच्छा।

यथास्थान घिस-घिस करते रहने वालों में उन्नति करने, नई सफलताएँ पाने की इच्छा का अभाव रहता है। सच्ची इच्छा में प्रेरणा की शक्ति भरी रहती है। जब मनुष्य एक अच्छी स्थिति पाने, स्थान से आगे बढ़ने, काम को ऊपर उठाने के लिए तड़प उठता है, व्यग्र एवं बेचैन हो जाता है, तब उसमें एक लगन जाग उठती है। वह अपनी तरक्की के साधन खोजने उपकरण इकट्ठे करने और मार्ग निकालने के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। सच्ची इच्छा, यथार्थ आकांक्षा से प्रेरित व्यक्ति रात-दिन, उठते-बैठते, खाते-पीते एवं व्यवहार करते समय भी अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रहता है। वह कहीं भी क्यों न हो कुछ क्यों न करता हो उसके लक्ष्य की तस्वीर सदैव उसके सामने रहती है। जाग्रत अवस्था में तो वह अपने लक्ष्य के प्रति विचार एवं

क्रियाशील रहता ही है, सोते में भी लगनशील व्यक्ति अपने लक्ष्य के ही सपने देखा करता है। अपने लक्ष्य के प्रति ईमानदार व्यक्ति उसके साथ तन-मन से एकाकार हो जाता है।

इच्छा तथा जिज्ञासा जीवन के लक्षण हैं। जिसमें इच्छा का प्रस्फुटन होता है, जिज्ञासा एवं उत्सुकता का जन्म होता रहता है, नित्य नए कदम बढ़ाने, तरक्की करने की उत्सुकता और नित्य नई बातें सीखने ज्ञान एवं योग्यताएँ प्राप्त करने की जिज्ञासा जाग्रत होती रहती है, वह ही यथार्थ रूप में जीवित हैं। एक स्थान पर पड़े रहना, एक स्थिति में स्थिर रहना, एक ही दशा को स्वीकार किए रहना जड़ता का चिन्ह है। पत्थर, पहाड़ आदि जड़ वस्तुएँ हैं। यह जहाँ जिस स्थिति में पड़ जाती हैं, पड़ी रहती हैं। इनमें जीवन तत्त्व का सर्वथा अभाव होता है। पेड़, पौधे आदि यों चेतन की तुलना में जड़ ही माने जाते हैं। पर उनमें जीवन तत्व का अभाव नहीं होता। यद्यपि वे एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर स्वयं नहीं जा सकते तब भी दिन-दिन बढ़ते और विकास करते रहते हैं। नए-नए फूल-फल उगाते रहते हैं। पशु यद्यपि चेतन श्रेणी में माने गए हैं तथापि वे मानसिक रूप से जड़ ही होते हैं। नैसर्गिक इच्छाओं की प्रेरणा के अतिरिक्त उनमें और किसी प्रकार की इच्छा का स्फुरण नहीं होता। नई कल्पनाएँ, नए विचार अथवा नूतन जीवन का उनसे कोई परिचय नहीं होता। वे जिस स्थिति में आदिकाल में थे, आज भी उस स्थिति में ही रह रहे हैं।

अपनी पूर्व स्थिति में यथा स्थान पड़े रहने वाले व्यक्ति एक प्रकार से ऐसी मानसिक जड़ता से आक्रांत रहते हैं। जो काम, जिस श्रेणी में उन्होंने प्रारंभ किया, उसी प्रकार उसी स्थिति में करते हैं। उसे विकसित करने, आगे बढ़ाने अथवा उसमें कोई अवांछनीय परिवर्तन लाने की जिज्ञासा उनमें होती ही नहीं। वे प्रातःकाल उठे, यंत्रवत् अपने आवश्यक नित्य-कर्म निपटाए और बिना किसी उल्लास अथवा नई आशा से काम पर चले गए, उसी दायरे उसी परिधि में चक्कर लगाया और शाम को वापिस आ गए। किसी दिन भी न तो

वे कोई नई बात सोचते हैं और न किसी नवीनता का पुट प्रकट करते हैं। कार्य करने की यह रुचि और यह पद्धति घोर मानसिक जड़ता की सूचक है।

ऐसी मानसिक जड़ता के रोगी व्यक्ति ही समाज में स्थगन, अरुचिता तथा अपरूपता को प्रश्रय देने वाले होते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को देखकर अन्य लोग किसी समाज की सभ्यता, असभ्यता, उन्नति तथा असमानता एवं विषमता का अंदाजा लगाते हैं और उसी के अनुसार उसका महत्त्व एवं मूल्यांकन करते हैं। पुरुषार्थी, परिश्रमी तथा कल्पनाशील व्यक्ति समाज में जितने सौंदर्य का अभिवर्धन करते हैं, उसे उस प्रकार के मानसिक जड़ लोग घटा देते हैं। समाज की अवमानना का दोष बहुत कुछ ऐसे ही जीवित मृत लोगों पर रक्खा जा सकता है।

अनुन्नतिशील व्यक्तियों की संतानें उचित मार्गदर्शन मिलने पर ही इस पैतृक दोष को त्यागकर उन्नतिशील हो पाती हैं। अन्यथा, वे भी अधिकतर यह मानसिक जड़ता विरासत में पाकर उसकी परंपरा बनाए रखती हैं। इसके लिए उन बेचारों को कोई दोष भी नहीं दिया जा सकता। वे तो स्वाभावतः पिता का ही अनुसरण करेंगे। जो कुछ सामने देखेंगे और जिन संस्कारों को पाएँगे, उन्हीं के अनुसार गतिशील होंगे। जिस व्यवसायी के पास कारोबार को आगे बढ़ाने की न तो कल्पना है और न इच्छा, जिज्ञासा, वह भला अपने पुत्र को अपनी प्रेरणा दे भी कैसे सकता है ? और यदि पुत्र अपनी किसी मौलिकता को प्रकट करता, तो परिवर्तन अथवा मोड़ लाने का साहस करता भी है तो उसका असाहसी पिता हानि अथवा बिगाड़ के भय से उसे निरुत्साहित करने में ही बुद्धिमानी समझता है। आगे निकलकर, पैर बढ़ाकर, परिवर्तन लाकर अथवा खतरा उठाने का साहस दिखलाकर व्यवसाय की उन्नति का प्रयत्न करना, वह अनियंत्रित उच्छृंखलता के समान अनुचित एवं अवांछनीय मानता है। उसे तो उसी अनुन्नत दशा में पड़े रहकर, उसी फटे-पुराने व्यवसाय को उसी प्रकार घिस-घिस कर चलाते रहने में ही सुरक्षा एवं कल्याण

दिखाई देता है। आलस्यजन्य, तामसी संतोष में वह अपनी आध्यात्मिक खूबी समझता है। फटा-पुराना, गंदा-गलीज पहनकर, उल्टा-सीधा, मोटा-झोटा पेट आधा पेट खा-पीकर और टूटे-फूटे, मैले-कुचेले साधन शून्य घर में चुपचाप बिना किसी उत्साह-उल्लास के जिंदगी काट डालने में बड़ी बहादुरी समझते हैं, जबकि यह आलस्य एवं जड़ताजन्य अभाव का अभिशाप है।

यदि ऐसे निरीह अथवा निस्पृह व्यक्तियों का मनोऽन्वेषण किया जाए तो न जाने इस मरघट में कामनाओं की कितनी सड़ी लाशें ईर्ष्या, द्वेष, तृष्णा एवं वितृष्णाओं, डाक एवं दुर्भावनाओं के कितने काले विषधर निकल पड़ें। अपने दुर्गुणों के कारण अभाव एवं दयनीयता से ग्रस्त व्यक्ति के मन में आध्यात्मिक महनीयता का कोई अंकुर कैसे उपज सकता है ? जो अकर्मण्य अथवा असाहसी व्यक्ति अपना लोक नहीं सुधार सकता वह परलोक के सुधार में तत्पर माना जाए यह जो अजीब-सी बात है। जो इस लोक में सफलताओं के नए-नए दिगंत छू नहीं सका, वह उस लोक के सुधारने, वहाँ सफलता पाने में क्या समर्थ होगा ?

जीवन-जड़ मनुष्य अपरूपता एवं असंगतियों के बड़े पोषक होते हैं और उन्हें अपने इस दुर्गुण में संकोच भी नहीं होता। जिस कुरूप दशा में घर में हैं उसी में दफ्तर, दुकान अथवा सभा निमंत्रणों में चले गए। देश काल के अनुसार अपनी दशा सुधारने की जरा भी जरूरत नहीं समझते, उन्हें उस स्थान में एक धब्बे की तरह चिपक जाने में जरा भी ग्लानि नहीं होती। पास-पड़ौस आमने-सामने की दुकानें मकान तरक्की कर रहे हैं, उन्नत, विकसित एवं सुंदर होते जा रहे हैं किंतु उनके बीच वे एक विजातीय तत्त्व की तरह विद्रूपता तथा विसंगति को लिए स्थापित हैं। उन्हें यह सब देखकर भी कुछ परिवर्तन लाने का विकास अथवा सुधार करने का उत्साह नहीं होता। माना उनके साधन की ससीमता और समाज उन्हें मजबूर करता है, वे ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ बड़े-बड़े सौध-प्रसादों का निर्माण नहीं कर सकते किंतु अपने घर दुकानों को झाड़-बुहार कर लीप-पोत कर,

झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-कर्कट हटाकर, उनकी खपरैल, छप्पर अथवा छानों को व्यवस्थित तथा सहेज सुधार कर साफ-सुथरा तो बना ही सकते हैं।

वैसे सत्य बात तो यह है कि जब कोई एक व्यक्ति अपने व्यवसाय तथा कारोबार को आगे बढ़ाकर साधन संपन्न बन सकता है, तब दूसरा क्यों नहीं बन सकता। किंतु कठिनाई तो यह है कि जड़ात्मा व्यक्तियों में उन्नति की कोई अनुभूति नहीं होती। वे तो भाग्य के भरोसे यथा स्थान पड़े-पड़े घिस-घिस ही करते रहते हैं। प्रयत्न शून्य रहकर भाग्य का भरोसा रखने वालों के हिस्से जो दुर्भाग्य नाम का दंड निश्चित रहता है वह उन्हें मिलता है। मौलिक रूप से न सही देखा-देखी ही यदि ऐसे व्यक्ति उन्नति का कुछ प्रयत्न करें तब भी तो बहुत कुछ हो सकता है, किंतु कहाँ ?

व्यवसाय छोटा है, दुकान कम चलती है, माल की कमी है—यह बहाना कोई अर्थ नहीं रखता। व्यवसाय छोटे-से ही बड़ा होता है। दुकान उपयुक्तता के आधार पर ही चलती है और माल साख तथा सद्भावना के भरोसे मिलता है। बाजार में जाइए, लोगों से संपर्क करिए लेन-देन का व्यवहार बढ़ाइए, वचन का पालन करिए और देखिए कि आपको माल की कमी नहीं रहती ! दुकान समय से खोलिए, अच्छा और खरा माल रखिए, उचित दाम लीजिए और ग्राहकों से मृदु विनम्र व्यवहार कीजिए। खुद साफ रहिए दुकान की हर चीज साफ रखिए। आकर्षक ढंग से सजाकर रखिए और वह चीजें अवश्य रखिए जिनकी माँग रहती है और तब देखिए कि आपकी दुकान चलती है या नहीं। आपके पास जो कुछ है, लोग वही खरीदें अथवा आप जो बेचना चाहें लोग वही खरीदें तो यह नीति उल्टी है। आप वह चीजें रखिए जिनकी लोगों को जरूरत है और वह बेचिए जिन्हें ग्राहक खरीदना चाहें। ग्राहकों की आवश्यकता एवं रुचि के साथ साम्य रखने वाला दुकानदार सफल और उनसे वैषम्य रखने वाला निश्चित रूप से असफल होता है।

इसी प्रकार मजदूर अध्यापक अथवा क्लर्क के विषय में भी यही बात है। बिना उन्नति की जिज्ञासा जगाए तरक्की नहीं हो सकती। मजदूर को चाहिए कि वह ठेले की तरह ढोने के काम में ही संतुष्ट न रहे। अपने काम को इतनी रुचि तत्परता तथा सावधानी के साथ करे कि स्पष्ट झलकने लगे कि यह काम पूरे मनोयोग से किया गया है। माल को ठीक से उठाना, यथास्थान ठीक से रखना कम से कम जगह में अधिक से अधिक माल सजा देना। बिना टोके और बिना रोके समय से अपना पूरा काम करना, मजदूर के वे गुण हैं जो उसे मेट बनवा सकते हैं। मजदूरों को ठेकेदार कर सकते हैं, वेतन तथा पद वृद्धि कर सकते हैं, तात्पर्य यह है कि इच्छित सफलताएँ प्राप्त कर सकते हैं।

प्राइमरी का एक मिडिल पास अध्यापक ट्रेनिंग करके अपनी पदोन्नति कर सकता है, इंट्रेन्स, एफ. ए., बी. तथा एम. ए. पास करके विद्यालयों व कॉलिजों में जा सकता है। एक से दो विषयों में अधिकार प्राप्त कर अपनी योग्यता बढ़ा सकता है। अपने विषय में पूर्णता प्राप्त कर दूसरों की दृष्टि में ऊपर उठ सकता है। विद्यालय के अन्य कार्यों में दक्षता प्राप्त कर प्रिंसिपल अथवा प्रधानाचार्य का दाहिना हाथ बन सकता है आदि ऐसी उन्नतियाँ हैं, जो कोई भी अध्यापक सहज में ही उपलब्ध कर सकता है।

क्लर्क जैसे सीमित स्थान में भी उन्नति कर सकने की कुछ कम संभावनाएँ नहीं हैं। साधारण क्लर्क टाइप सीखकर उपयोगिता बढ़ा सकता है। अपने काउंटर के अतिरिक्त अन्य स्थानों का काम सीखकर अपना विस्तार कर सकता है। चिट्ठी-पत्री, जानकारी, सूचना, नियमों तथा विषय में निपुणता प्राप्त कर अपने अधिकारियों को निर्भर कर सकता है।

तात्पर्य यह है कि उन्नति एवं सफलताओं का आधार कोई स्थान, पद अथवा अवसर नहीं है उसका आधार है जिज्ञासा, इच्छा, नवीनता तथा अखंड परिश्रम एवं लगन ! यथा स्थान

पड़े-पड़े घिस-घिस करते रहना जड़ता का लक्षण है। अपनी उन्नति का प्रयत्न न करना न केवल अपने साथ ही बल्कि पुत्रों तथा समाज के साथ भी अन्याय करना है। समाज की शोभा उसकी सफलता एवं संपन्नता हमारी उन्नति एवं विकास पर निर्भर है। अस्तु, हम आज जहाँ पर पड़े हैं, वहाँ से आगे उठने में तन, मन, धन भर कोई कसर उठा नहीं रखनी चाहिए। सफलता निश्चय ही हमारे चरण चूमेगी।

सात साधन

जीवन में सफलता पाने के जितने साधन बतलाए गए हैं, उनमें विद्वानों ने सात साधनों को प्रमुख स्थान दिया है। जो मनुष्य अपने में इन सात साधनों का समावेश कर लेता है, वह किसी भी स्थिति का क्यों न हो, अपनी वांछित सफलता का अवश्य वरण कर लेता है। वे सात साधन हैं—परिश्रम एवं पुरुषार्थ, आत्म विश्वास एवं बलिदान, स्नेह एवं सहानुभूति, साहस एवं निर्भयता, प्रसन्नता एवं मानसिक संतुलन।

दीपक जलता है। संसार को प्रकाश देता है और श्रेय के रूप में सफलता प्राप्त करता है। दीपक की इस सफलता का रहस्य यही तो है कि वह अपने तेल तथा बत्ती को तिल-तिलकर जलाता रहता है। उसका प्रकाश वस्तुतः उसकी उस निरंतर ज्वलनशीलता का ही होता है, जिसको वह लौ के रूप में बत्ती से प्रकट करता है। दीपक का कर्त्तव्य जलना है। जिस समय भी वह अपने इस कर्त्तव्य से विरत होकर निष्क्रिय हो जाता है, प्रकाशरूपी सफलता उससे दूर चली जाती है। वह एक मूल्यहीन मिट्टी के पात्र से अधिक कुछ नहीं रह जाता। अपनी निर्जीवता अथवा निष्क्रियता के कारण वह इतना महत्त्वहीन हो जाता है कि लोग उसे यथा स्थान पड़ा भी नहीं रहने देना चाहते।

इसी प्रकार जो मनुष्य अपने शरीर का सार परिश्रमरूपी तप में यापन करते हैं, अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं का समुचित उपयोग

करते हैं वे आलोक पाकर कृत्कृत्य हो जाते हैं। सक्रियता ही जीवन है और निष्क्रियता ही मृत्यु। श्रम से विरत रहकर आलस्य अथवा प्रमाद में पड़े रहने वाले मनुष्य को जीवित नहीं कहा जा सकता। भले ही वह लुहार की धौंकनी की तरह स्वांसें क्यों न ले रहा हो ? मनुष्य जीवन की सार्थकता श्रम में ही है। श्रम से शरीर स्वस्थ एवं स्फूर्तिवान बनता है, जिससे वांछित सफलता की ओर बढ़ने में प्रेरणा मिलती है। निष्क्रिय कामना कभी सफल नहीं होती।

मनुष्य जो कुछ चाहता है यदि वह उसके लिए हर संभव उद्योग न करेगा, अपना पसीना न बहाएगा तो वह उसे बैठे-बैठे किस प्रकार मिल सकती है ? सफलता मनुष्य के पसीने का मूल्य है इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए। कोई भी सफलता पाने योग्य शक्तियाँ मनुष्य में निहित हैं किंतु उनका उभार, निखार तथा उपयोग परिश्रम एवं पुरुषार्थ करने में ही है। जिस प्रकार निरंतर गतिशील नदी का जल निर्विकार एवं जीवन पूर्ण बना रहता है ओर अवरुद्ध सरोवर का जल विकृत एवं निर्जीव हो जाता है, उसी प्रकार श्रमशील पुरुषार्थी व्यक्ति की शक्तियाँ सजीव एवं सार्थक बनी रहती हैं और आलसी तथा निकम्मे व्यक्ति की शक्ति निर्जीव होकर नष्ट हो जाती है। सरिता के समान निरंतर बढ़ते रहने वाला व्यक्ति अपने लक्ष्य को पाने में उसी प्रकार सफल हो जाता है, जिस प्रकार सरिता अपने लक्ष्य को पाने में सफल हो जाती है।

कोई व्यक्ति परिश्रमी तथा पुरुषार्थी तो है किंतु उसमें आत्म विश्वास तथा आत्म निर्भरता की भावना का अभाव है तो उसका पुरुषार्थ निष्फल जा सकता है। आत्म-विश्वासी तथा परावलंबी व्यक्ति कभी अपना स्वतंत्र लक्ष्य निर्धारित नहीं कर सकता और यदि वह एक बार ऐसा कर भी लेता है तो वह हर कदम पर आगे बढ़ने से न केवल झिझकेगा ही बल्कि परमुखापेक्षी भी बना रहेगा। सभी जानते हैं कि सफलता का मार्ग सरल नहीं होता। उसमें बाधाएँ एवं अवरोध भी आते हैं। अब तो आत्म-विश्वासी नहीं है, जिसे अपने तथा अपनी शक्तियों में विश्वास नहीं है, अवरोध देखकर उसके कदम

निश्चय ही रुक जाएँगे। इस प्रकार कदम-कदम पर आने वाले अवरोधों को देखकर जो क्षण-क्षण रुकता, डरता और झिझकता रहेगा वह अपने ध्येय पथ को सात जन्म में भी पूरा नहीं कर सकता। आत्म-विश्वास अथवा स्वावलंबन से हीन व्यक्ति की कोई सहायता सहयोग भी नहीं करता। नियम है कि लोग उसी की सहायता किया करते हैं, जो अपनी सहायता आप किया करता है और जिसका हृदय आत्म विश्वास की भावना से ओत-प्रोत है। आत्म विश्वास तथा आत्मावलंबन से रहित व्यक्ति किसी अन्य की सफलता में भले ही सहायक हो जाए अमौलिक होने से अपने लिए कोई उल्लेखनीय सफलता अर्जित नहीं कर सकता।

मनुष्य परिश्रमी भी है और आत्म-विश्वासी भी किंतु उसमें जिज्ञासा अथवा लगन की कमी है, तो भी उसका नाम सफल व्यक्तियों की सूची में आ सकना कठिन है। जिसमें जिज्ञासा नहीं है वह आगे बढ़ने और ऊपर चढ़ने के लिए उत्साहित ही किस प्रकार हो सकता है ? सफलता के लिए उद्योग तो दूसरी बात है पहले तो उसके लिए जिज्ञासा होनी चाहिए। जिसे आगे बढ़ने की जिज्ञासा नहीं, सफलता पाने के लिए कोई उत्साह नहीं वह तो अपनी क्षमताओं तथा योग्यताओं के लिए उसी प्रकार निरुपयोगी पड़ा रहेगा, जिस प्रकार निर्जन वन में खिलने वाली लता अपने फूल लिए पड़ी हुई सड़ा करती है, जिसमें जिज्ञासा है और उसे साकार करने के लिए लगनशीलता की कमी नहीं है, अपने ध्येय, लक्ष्य तथा उद्देश्य में निष्ठा है, वह उसे प्राप्त करने से कोई संभव उपाय उठा न रखेगा ! सच्ची जिज्ञासा एवं निष्ठा वह स्वाभाविक प्रेरणा है जो मनुष्य को उसके गंतव्य स्थान पर पहुँचाए बिना नहीं रहती। जिसकी लगन इस सीमा तक जा पहुँची है कि वह विचार करते समय स्वयं विचार और कार्य करते समय कार्य रूप ही हो जाता है; उसे लक्ष्य मार्ग में ऐसा कौन-सा अवरोध हो सकता है जो रोक सके। जिज्ञासा और निष्ठा जीवन की दो शक्तियाँ हैं, सफलता के जिज्ञासुओं को इनका विकास कर ही लेना चाहिए।

मनुष्य में सफलता प्राप्त करने के अनुरूप अनेक गुण हैं किंतु उसमें संकीर्णता का एक दुर्गुण भी है तो यह दुर्गुण उसी प्रकार गुणों की क्षमता को नष्ट कर देगा जिस प्रकार हींग की गंध किसी भी सुगंध को दबा देती है। सफलता एक प्राप्ति है, उपलब्धि है, जिसको समाज में समाज की सहायता से ही पाया जाता है ! नियम है कि जो देता है वही पाता है। यदि कोई यह चाहे कि वह संसार में पाता तो सब कुछ चला जाए किंतु उसे देना कुछ भी न पड़े तो ऐसा स्वार्थी तथा संकीर्ण भावना वाला व्यक्ति इस आदान-प्रदान पर चलने वाले संसार में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। अस्तु सफलता पाने अथवा उसकी संभावनाएँ सुनिश्चित बनाने के लिए आवश्यक है कि किसी भी आवश्यक त्याग तथा बलिदान के लिए सदा तत्पर रहा जाए। मानव समाज के लिए अपने सर्वस्व को बलिदान करने वालों का जीवन तो यों ही सफल हो जाता है फिर वे कोई विशेष कार्य कर दिखाएँ अथवा नहीं हृदय में त्याग तथा बलिदान की भावना का परिपाक होना आप में स्वयं ही एक बड़ी सफलता है !

जो उत्सर्ग नहीं कर सकता वह कभी कुछ पा भी नहीं सकता। शिशिर में प्रकृति की आवश्यकता पर पेड़, फूल-पत्तों का त्याग कर देते हैं फलस्वरूप सैकड़ों गुना सुंदर पत्तों, फूलों तथा फलों का उपहार मिलता है। बीज अपने अस्तित्व का उत्सर्ग ही नहीं संपूर्ण तिरोधान कर देता और तभी अपने इस त्याग के फलस्वरूप वह वृक्ष के रूप में सफल होकर संसार को छाया तथा फल देकर श्रेय का भागी बनता है। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हृदय में संकीर्णतापूर्ण स्वार्थ को स्थान न दिया जाए।

संसार में एक से बढ़कर धनकुबेर विजयी तथा विद्यावान व बलवान हुए हैं और उन्होंने ऐसे काम भी कर दिखाए हैं जो इतिहास में स्मरणीय हैं, किंतु अनेक मानों में वे असफल ही रहे हैं। जिसने स्वार्थ शोषण तथा अनुचित उपायों से धन कमाया है, हजारों लाखों का रक्त बहाकर विजय प्राप्त की है। शासन स्थापित कर मनुष्यों को

सताकर और धन बढ़ाकर शोषण की क्रूरता करते रहने वाले विजयी अथवा धनवान व्यक्ति किसी प्रकार भी सफल नहीं माने जा सकते फिर वे क्यों न ऐतिहासिक स्थिति तक उठ गए हों। जिस व्यक्ति को लोगों ने घृणा से याद किया, जिसे इतिहास के काले पृष्ठों पर लिखा गया वह समस्त संसार का स्वामी होने पर भी असफल व्यक्ति ही कहा जाएगा। सफलता अथवा उसके प्रयत्न में यदि स्नेह तथा सहानुभूति का समावेश न किया जाएगा तो वह या तो असफलता में बदल जाएगी अथवा प्राप्त ही नहीं होगी ! जो क्रूर, कठोर तथा असंवेदनशील है, उसके यह दोष ही उसके मार्ग में कांटे बनकर बिखर जाएँगे। उन्नति तथा विकास की ओर चलने के इच्छुक को स्नेह तथा सहानुभूति को हृदय में स्थान देना आवश्यक है, जिससे कि प्रतिदान में वह भी स्नेह-सहानुभूति पाता रहे और उसका पथ अवरोध होता रहे।

अपने गुणों के आधार पर श्रेय पथ पर बढ़ने वाले व्यक्ति में यदि निर्भयता की कमी है तो समझ लेना चाहिए कि वह अपने लक्ष्य तक न पहुँच सकेगा। भीरु व्यक्ति में आगे बढ़ने का साहस ही नहीं होता। वह पग-पग पर आपत्तियों तथा कठिनाइयों की शंका करता रहेगा। सफलता के मार्ग पर असफलता का भय अस्वाभाविक नहीं है, भीरु व्यक्ति इसी अज्ञात अथवा असंभाव्य असफलता के कारण अपना अभियान ही आरंभ न करेगा। जिस श्रेय का आरंभ ही न होगा उसका परिणाम आ भी किस प्रकार सकता है ? संसार में दुष्टों तथा खलों की कमी भी नहीं है। वे स्वभावतः ही बढ़ते हुए व्यक्ति के मार्ग में अवरोध एवं विरोध बनकर खड़े हो जाते हैं। ऐसे समय में दुष्टों तथा खलों से निबटने के लिए उस साहस की आवश्यकता होती है, जो भीरु व्यक्ति में नहीं होता। असफलता अथवा अवरोध से भयभीत रहने वाला व्यक्ति जीवन में कभी भी सफलता नहीं पा सकता। सफलता अथवा श्रेय पथ का दूसरा छोर पाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने में निर्भयता का विकास करे। अन्यथा

उसका भय उसे मैदान छोड़कर भागने के लिए किसी समय भी विवश कर सकता है।

सफलता पाने के लिए प्रसन्नता की उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीर यात्रा के लिए जीवन की। अप्रसन्नचेता व्यक्ति एक प्रकार से निर्जीव ही होता है। जो फूल मुरझाए रहते हैं उन्हें जीवित नहीं कहा जा सकता। अप्रसन्न-चेता व्यक्ति को विषाद तथा निराशा का क्षय रोग लग जाता है, जिससे उसका सारा उत्साह नष्ट हो जाता है। सफलता के पथ पर आए अवरोधों तथा विरोधों का सामना करने का साहस भी हो और संबल भी किंतु हृदय में निर्मलता का अभाव हो तो क्या वह व्यक्ति अपने ध्येय में सफल हो सकता है ? एक छोटी-सी असफलता, एक रंचक विरोध आ जाने पर वह छुई-मुई की तरह मुरझाकर निराश तथा हताश हो जाएगा तब भला इस प्रकार के निम्न स्वभाव वाला व्यक्ति सफलता के महान् पथ पर किस प्रकार आरूढ़ हो सकता है ? मानसिक संतुलन प्रसन्नता के आधीन रहा करता है। अप्रसन्नता की स्थिति में मनुष्य का संतुलन असंभव है और असंतुलन निश्चित रूप से असफलता की जननी है।

इस प्रकार सफलता के आकांक्षी व्यक्तियों को चाहिए कि वे श्रेय पाने के लिए सफलता के इन साधनों का अभ्यास एवं विकास करते हुए अपने पथ पर बढ़ें, उन्हें सफलता मिलेगी और अवश्य मिलेगी।

❐ ❐

सतत कर्मशील रहें

सतत क्रियाशील ही सफलता का आधार है। जो निष्क्रिय है, कुछ नहीं करता, हाथ-पाँव नहीं हिलाता, आलस में पड़ा रहता है, वह वास्तविक अर्थों में जीवित भी नहीं कहा जा सकता। फिर सफल क्या होगा ?

यह ठीक है कि सफलता का प्रारंभ मनुष्य के आंतरिक जीवन में ही होता है। पहले मन में सफलता के उपयुक्त मनोभूमि का निर्माण होता है, समस्त महान कार्य विचार क्रम के रूप में मानस पटल पर उदित होते हैं, तब धीरे-धीरे बाह्य जगत में उनका प्रादुर्भाव होता है।

किसी कार्य की योजना बनाना, लंबी-लंबी बातें सोचना एक बात है, उसे वास्तविक जीवन में कार्यों द्वारा अभिव्यक्त करना बिल्कुल दूसरी बात है। अनेक व्यक्ति यह गल्ती करते हैं कि अपनी समस्त शक्तियाँ केवल सोचने-विचारने, योजना निर्मित करने में लगा देते हैं, वास्तविक संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाने का उन्हें अवसर ही प्राप्त नहीं होता। ठोस परिश्रम करने की उन्हें आदत नहीं होती। वे हाथ-पाँव के कार्य से दूर भागते हैं। बातें हजार बनाएँगे किंतु कार्य रत्तीभर भी न करेंगे ? संसार में इतनी आवश्यकता बात-चीत, योजनाओं, जबानी जमा-खर्च की नहीं है, जितनी कार्य की। जो विचार कार्यरूप में परिणत हो गया, वह जीवित विचार कहा जाएगा, जिन विचारों, योजनाओं, पर अमल नहीं हुआ, जिन्हें प्रत्यक्ष जीवन में नहीं उतारा गया, वह मृतप्राय है। उन पर व्यय की गई शक्ति अपव्यय ही है।

क्रियात्मक कार्य ही संसार का निर्माण करता है। सफल व्यक्ति अपने आंतरिक विचार तथा बाह्य कार्य में पर्याप्त समन्वय करने की

अपूर्व क्षमता रखते हैं। उनके पास क्रियात्मक विचारों की शक्ति रहती है। वे अपने विचारों को जीवन देते हैं अर्थात् उन पर निरंतर काम करते हैं और प्रत्यक्ष जीवन में उतारते हैं।

एक मनुष्य ने कहा है, "नरक का मार्ग अच्छी योजनाओं से बना है।" तात्पर्य यह है कि अच्छी बातें सोचने वाले केवल सोचते ही रह जाते हैं, हवाई जमा-खर्च करते रह जाते हैं। वास्तविक कार्य नहीं करते। सोचने ही सोचने में उनकी इतनी शक्ति व्यय हो जाती है कि कार्य करने की शक्ति नहीं बचती। जिन महत्त्वपूर्ण योजनाओं का कोई उपयोग न हो और जो कपोल कल्पना मात्र हों, उनसे क्या लाभ ?

कहते हैं रावण के पास अमृत के कई घड़े थे। यदि युद्ध से पूर्व वह उनका पान कर लेता, तो संभवतः मृत्यु को प्राप्त न होता किंतु रावण पान को टालता गया। योजनाएँ बनाता रहा। अंततः वह क्षय को प्राप्त हुआ।

नैपोलियन कहा करता था, "मुझसे कोरी बातें न करो। कार्य करके दिखाओ। मैं कार्य चाहता हूँ। ठोस जीता-जागता पुरुषोचित कार्य। बातें नहीं, मुझे कार्य चाहिए।"

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे"—इस कथन में भी कार्य की महत्ता और ऊपरी उपदेश की मूर्खता पर व्यंग्य है। दूसरों को उपदेश देना, बड़ी-बड़ी बातें बनाना, "ऐसा करो, वैसा करो"—यह कहने वाले आपको अनेक साधु, संत, ढोंगी मिलेंगे। भगवा वस्त्र धारण कर सरल प्रकृति के नागरिकों को मूर्ख बनाना कितना सरल है, लेकिन जहाँ वास्तविकता का प्रश्न है, ये उपदेशक, दिखावटी नेता अपने असली स्वरूप में प्रकट हो जाते हैं। अनेक चोर, गठकंटे, खुफिया पुलिस वाले, उपदेश का बाना बनाए डोलते रहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि किसी के उपदेश या विचार ग्रहण करने से पूर्व उसके प्रत्यक्ष कार्यों को भी देखा और परखा जाए। जो कार्य की कसौटी पर खरा उतरे, जिसके नियम

आचरण की भित्ति पर खड़े हों, उसी कर्ममार्गी के विचार ग्रहण किए जाएँ।

इच्छाओं का सागर जब हिलोरें लेता है, तब वह कल्पना के समस्त मादक आकर्षण के साथ अनेक बात कहता है, हम कल्पना के लंबे हाथों से संसार का सब कुछ पकड़ लेना चाहते हैं। संसार की कठोर चट्टानों का, जिन पर सृष्टि के अगणित व्यक्तियों की सुकुमार महत्त्वाकांक्षाएँ टूट चुकी हैं, हमें ज्ञान नहीं रहता। कामनाएँ नित्य ही हाथ पसारा करती हैं, पर संसार की सीमाएँ और हमारी मजबूरियाँ हमें जहाँ की तहाँ रहने देती हैं। कामनाएँ उतनी ही सिद्ध होती हैं, जितनी कर्म में परिवर्तित हो जाती हैं।

जब तक जीवन में अनुभवजन्य ज्ञान की कमी है, तब तक मनुष्य स्वप्नों के मनोरम लोक में विहार करता रहता है परंतु जैसे-जैसे उसे संसार की बाधाओं का ज्ञान होता है, वैसे-वैसे उसे प्रतीत होता है कि कल्पनाओं और योजनाओं का जो रूप उसने प्रारंभ में कल्पना के नेत्रों से देखा था, वास्तव में वह वैसा नहीं है। वास्तविक रूप अज्ञान के अनुभव को ही कहते हैं। अनुभव कर्म से प्राप्त होता है। कर्म के साथ ही जीवन में सफलता जुड़ी रहती है।

एक कवि ने लिखा है, "जहाँ जीवन घायल पंछी-सा रात-दिन चीखें मार रहा है, वहाँ कल्पना की ऊँची उड़ानों में डूबा रहना, जीवन का उपहास करना है।"

संसार में जो कुछ शिव और सुंदर दृष्टिगोचर होता है, वह मनुष्य की श्रमशीलता का ही सुफल है। कला-कौशल की सारी उपलब्धि श्रम के आधार पर ही होती है। यदि मनुष्य ने श्रम को न अपनाया होता तो वह भी अन्य पशुओं की तरह पिछड़ी स्थिति में पड़ा रहता। मनुष्य को छोड़कर संसार के सारे प्राणी आज भी उसी

आदि स्थिति में रह रहे हैं, जिसमें वे सृष्टि के आरंभ में थे। मनुष्य की प्रगति का कारण उसकी श्रमशीलता ही है।

मनुष्य ने श्रम करके अपने रहने के लिए मकान बनाए, पहनने के लिए कपड़ा तैयार किया और खाने के लिए खेती का धंधा अपनाया यही नहीं जीवन को और अधिक सुंदर तथा सुखदाई बनाने के लिए अनेक प्रकार के कला-कौशलों का विकास किया। वह जीवन की सुविधा के लिए कोई एक चीज बनाकर वहीं नहीं रुक गया बल्कि उसको अधिकाधिक विकसित तथा सुंदर बनाने के लिए निरंतर श्रम करता रहा तभी वह एक साधारण झोंपड़ी से चलकर बड़े-बड़े प्रासादों तक आ सका है। साधारण बोने-काटने से लेकर असाधारण उद्योग-धंधों तक पहुँच सका है। नग्नता ढकने से लेकर पट-परिधानों तक का निर्माण कर सका है। इतनी प्रगति तथा उन्नति मनुष्य अपनी श्रमशीलता के बल पर ही कर सका है।

यदि रहन-सहन की साधारण सुविधाओं को निर्मित करके मनुष्य वहीं रुक जाता है और अपनी श्रमशीलता का परित्याग कर देता तो वह इतनी उन्नति किस प्रकार कर सकता था और अब भी जिस दिन मनुष्य अपनी श्रमशीलता को छोड़ देगा बना हुआ संसार बिगड़ने लगेगा। महल अट्टालिकाएँ खंडहरों में बदलने लगेंगी। पट-परिधान पत्तों और छालों तक लौटने लगेंगे और सुंदर खाद्य बनैली वस्तुओं तक सीमित होने लगेंगे। आशय यह है कि श्रमशीलता त्यागते ही संसार आदिकालीन वनचरता की ओर पुरोगामी होने लगेगा।

कोई भी उन्नति, प्रगति अथवा सुंदर सुरक्षित रहने के लिए मनुष्य की अनवरत श्रमशीलता की अपेक्षा रखती है। आज भी संसार में हजारों लाखों खंडहर ऐसे पाए जाते हैं, जो मनुष्य की श्रमशीलता की गवाही देते हुए, उसके आलस्य एवं उदासीनता पर आँसू से बहा रहे होते हैं।

आध्यात्मिक और अनवरत श्रम जरूरी

एक बार एक बड़े परिश्रम के साथ मनुष्यों ने ऊँचे-ऊँचे शिल्प खड़े किए। उन्हें कला-कृतियों से सजाया और बहुत समय तक उनकी रक्षा की, किंतु कालांतर में जब उन्होंने उसको आवश्यक परिश्रम एवं अपेक्षता का अंश देना बंद कर दिया, वे मिट्टी मात्र बनकर रह गए।

बड़े-बड़े साम्राज्य, बड़े-बड़े समाज, बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ और बड़ी-बड़ी संस्कृतियाँ मनुष्य की श्रम साधना से बनीं और फिर उसी की अनाश्रमिक प्रवृत्ति के कारण मिट गईं। श्रम के बल पर बनाई गई कोई भी वस्तु बनी रहने के लिए निरंतर श्रम की आवश्यकता रखती है। यदि आज यह सोच लिया जाए कि संसार में सुख-सुविधा के प्रचुर साधन इकट्ठे हो गए हैं, अब आगे उनके लिए श्रम करने की क्या आवश्यकता है, तो निश्चय ही कल से संसार में दरिद्रता का सूत्रपात हो जाए। श्रम से ही श्रेय प्राप्त होते हैं और श्रम से ही वे सुरक्षित रहते हैं।

बड़े से बड़े परिश्रम के साथ ऊँची से ऊँची शिक्षा एवं योग्यता प्राप्त कर लेने के बाद वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर और डॉक्टर आदि यह सोच लें कि पच्चीस-तीस साल के कठिन पुरुषार्थ के बाद उन्होंने पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर ली है अब उसके लिए परिश्रम की क्या आवश्यकता है, तो क्या वे एक दिन भी अपनी योग्यता सुरक्षित रख सकते हैं ? इसलिए सारे समझदार वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर आदि अपनी योग्यता को सुरक्षित बनाए रहने के लिए निरंतर श्रम करते रहते हैं और जो ऐसा न करने की भूल किया करते हैं, वे अपने क्षेत्र में दूसरों से पिछड़ जाते हैं। जो एक बार उपार्जित योग्यता के बल पर जीवन भर योग्य बने रहने की सोचते हैं, वे भूल करते हैं। परिश्रम, प्रयत्न और पुनरावृत्ति में स्थान आ जाने से उपार्जित योग्यताएँ भी पास से चली जाती हैं। वे तभी तक किसी के पास बनी रह सकती हैं, जब तक उनके लिए श्रम किया जाता रहता है।

कला-कौशल की बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ श्रम हीनता एवं अभ्यास शून्यता से निकम्मी हो जाती हैं। एक शिल्पकार, चित्रकार अथवा कलाकार अपनी सिद्धि के संतोष में यदि अभ्यास का परित्याग कर दे तो क्या वह दक्ष बना रह सकता है ? जिस श्रम की बदौलत वह एक से एक ऊँचे और बढ़िया निदर्शन तैयार करता रहता है, उसी के अभाव में आगे प्रगति करना तो दूर पीछे की विशेषताएँ भी खो देगा। यही कारण है कि संसार में सैकड़ों उदीयमान कलाकार और शिल्पकार ऐसे हुए हैं, जो अपनी ऊँची संभावनाओं की एक झलक दिखाकर बुझ गए और संसार उनकी असफलता पर तरस खाता रह गया। उदीयमान प्रतिभाओं के पतन का एक ही कारण होता है—'प्रमाद !' जो प्रारंभिक परिश्रम से लेकर उठता है, उसका त्याग कर दिए जाने से भविष्य की संभाव्य प्रगति रुक गई और उदीयमानता अस्तमित होकर अंधकार के परदे में चली गई। इसलिए आवश्यक है कि अपनी योग्यताओं एवं विशेषताओं को तरुण बनाए रखने के लिए अविराम परिश्रम में संलग्न रहा जाए।

कला-कौशल की भाँति अनवरत श्रमशीलता का नियम धनोपार्जन के क्षेत्रों में भी लागू होता है। जो व्यापारी, व्यवसाई अथवा उद्योगी अपने कार्य में निरंतर परिश्रम करते रहते हैं, वे न केवल अपने व्यवसाय को सुरक्षित ही बनाए रखते हैं, बल्कि बढ़ाया भी करते हैं। परिश्रम के बल पर कुछ समय में लाखों-करोड़ों की दौलत कमा लेने के बाद यदि कोई उद्योगी यह सोचकर प्रमादी बन जाए कि अब तो पर्याप्त धन मिल गया है, अब परिश्रम अथवा उद्योग करने की क्या आवश्यकता है, तो उसकी वह अपरमित संपत्ति उससे भी कम समय में समाप्त हो जाएगी, जितने समय में उसने उसे कमाया है।

उपार्जन की ओर ध्यान लगा रहने से मनुष्य का मस्तिष्क अपव्यय की ओर से हटा रहता है। जब मन और मस्तिष्क की गति आय की दिशा में लगी हुई है तो उसकी विपरीत दिशा का अपव्यय

की ओर न जाना स्वाभाविक ही है किंतु ज्यों ही आय की ओर से उन्हें छुट्टी मिली नहीं कि वे व्यय की ओर चल पड़े। एकमात्र व्यय की ओर चले हुए मन-मस्तिष्क फिर केवल व्यय तक ही सीमित नहीं रह सकते, अपव्ययता से होते हुए अनिवार्य रूप से व्यर्थ-व्ययता और व्यसन-व्ययता तक पहुँच जाएँगे।

व्यक्तिगत जीवन की तरह निरंतर श्रमशीलता का नियम समाजों एवं राष्ट्रों के उत्थान-पतन में भी लागू होता है। जिस समाज अथवा राष्ट्र के नागरिक जितने अधिक श्रमशील होंगे, वह राष्ट्र व समाज उतनी ही अधिक उन्नति करता जाएगा। अमेरिका अथवा रूस यद्यपि संसार के अनेक देशों से छोटे देश हैं, किंतु निरंतर श्रम की बदौलत आज वे संसार के सबसे समृद्ध एवं शक्तिशाली देश बने हुए हैं। यदि वह दोनों देश अपनी वर्तमान समृद्धि से संतुष्ट होकर अविराम श्रमिकता का परित्याग कर दें ? तो क्या कल वे इस स्थिति में रह सकेंगे ? कदापि नहीं और निश्चय ही जिस दिन वे श्रम को छोड़कर प्रमाद के वशीभूत हो जाएँगे, उसी दिन से उनका पतन प्रारंभ हो जाएगा।

इसलिए क्या व्यक्ति और क्या राष्ट्र जो भी अपनी उन्नति चाहता है और अपनी वर्तमान उपलब्धियों को भविष्य में सुरक्षित रखना चाहता है, वह अविरत परिश्रम का महामंत्र अपनाकर आलस्य एवं प्रमाद के अभिशाप से सदा दूर रहे।

कहना न होगा कि जिस प्रकार भारतवासियों ने अविरत संघर्ष के बल द्वारा जिस स्वाधीनता को उपलब्ध किया है, उसे सुरक्षित रखने और समृद्धि का रूप देने के लिए उन्हें अखंड पुरुषार्थ करना ही होगा। अन्यथा न तो स्वतंत्रता की रक्षा कर पाएँगे और न समृद्धि के शुभ दर्शन कर पाएँगे। इसी प्रकार निजी जीवन में हर व्यक्ति को नित नई सफलताएँ पाने और उन्हें सुरक्षित रखने के लिए अनवरत श्रम आवश्यक होता है।

पुरुषार्थी बनें और विजयश्री प्राप्त करें

वेद भगवान का कथन है—"कृत मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः। गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजवो हिरण्यजितः।।"

हे मनुष्य ! तू अपने दाहिने हाथ से पुरुषार्थ कर बाएँ में सफलता निश्चित है। गोधन, अश्वधन, स्वर्ण आदि को तू स्वयं अपने परिश्रम से प्राप्त कर।

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में मानवीय सफलताओं की संभावनाएँ इतनी अधिक हैं कि उनका—उल्लेख नहीं हो सकता। अपनी शक्तियों को विकसित करके मनुष्य अपनी भौतिक उन्नति कर सकता है। जो वस्तु इन सबके लिए अपेक्षित है वह है मनुष्य का पुरुषार्थ। अपनी शक्तियों की पहिचान और उनका सदुपयोग। जहाँ मनुष्य के पुरुषार्थ ने साथ दिया है, वहाँ अनेक विघ्न-बाधाओं में, तीव्र विरोधों में भी उसकी जीत हुई है। पुरुषार्थ सफलत'ओं का जनक है।

दृढ, प्रयत्न और सतत् उद्योग करते रहने वाले पुरुष सिंहों ने इस संसार में विलक्षण क्रांतियाँ की हैं। परिस्थितियाँ उन्हें किसी भी तरह दबा नहीं पाईं। दुःख, निराशा, अनुत्साह उनकी कभी राह नहीं रोक पाए। एकाकी पुरुषार्थियों ने वह कर दिखाया है, जो अनुत्साहग्रस्त कोई बड़ा राष्ट्र भी नहीं कर पाया है।

ऐसे उदाहरणों से संसार में पुस्तकों के पन्ने पर पन्ने भरे पड़े हैं। आलस्य और अकर्मण्यता के द्वारा मनुष्य दीन-दुर्बल और पतित बना रहे यह एक अलग बात है, किंतु उसका आत्मविश्वास यदि जाग जाए, उसकी सोई हुई शक्तियाँ उमड़ पड़ें तो मनुष्य न रहकर अपने ज्ञान और अनुभव का लाभ छोड़ जाता है।

लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही पुरुषार्थ कहलाता है। मनुष्य अपने परिश्रम और व्यवसाय से देव को भी दबा देने की शक्ति रखता है। बाधाएँ पड़ने पर भी वह खेद नहीं कर सकता—हतोत्साहित होकर नहीं बैठता। पुरुषार्थी पुरुष

ही इस संसार के सुखों का उपभोग करते हैं। कायर और कापुरुष तो अपनी दीनता का ही रोना रोते रहते हैं।

पुरुषार्थ मनुष्य को कर्म की ओर प्रवृत्त करता है, इससे साधन हीनता मिटना स्वाभाविक है। पर पुरुषार्थविहीन मनुष्य को तो विपत्तियाँ ही घेरे रहती हैं। उनकी उन्नति का मार्ग रुक जाता है, गौरव समाप्त हो जाता है। मनुष्य का भाग्य बदल देने की सारी शक्ति पुरुषार्थ में भरी है। उद्योगशील पुरुष के पीछे लक्ष्मी घूमा करती है, इस कथन में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। कैसी भी कठिन समस्या आती है, उससे डरिए नहीं, लड़ने की शक्ति पैदा कीजिए आप जरूर सफल होंगे।

असहाय और निराशा के क्षणों में मनुष्य का साथ पुरुषार्थ ही देता है। मनुष्य धैर्य धारण करे और विपरीत परिस्थिति में भी खोज करे तो सहारे का मार्ग मिल जाता है। सच्चाई और ईमानदारी का प्रस्ताव वह ठुकराए नहीं तो अपनी समस्याओं का सुधार जल्दी ही कर लेता है। उन्नति के पथ पर आरोहण के इच्छुक मन वाले, धैर्यवान् व्यक्ति आपत्तियों को दूर भगाने में अपने पुरुषार्थ का आश्रय लेना उचित मानते हैं। पुरुषार्थ ही शूरवीरों का सच्चा सहायक होता है।

शारीरिक, आर्थिक या सामाजिक जैसी भी स्थिति में उलझनें, विपत्तियाँ और परेशानी आती हों, उनसे लाभ मनुष्य अपने परिश्रम और पुरुषार्थ के द्वारा उठा सकता है। कठिनाइयाँ सदैव मनुष्य का मार्ग दर्शन करती हैं, किंतु इसके लिए उसे धैर्यवान् होना आवश्यक है। कठिनाइयों से लड़ने की शक्ति नहीं आई तो मनुष्य घबड़ा जाएगा और जो कुछ भली परिस्थितियाँ हैं उन्हें भी खो बैठेगा। यदि हमारे सामने सफलता के लिए सारे दरवाजे बंद हो चुके हैं, तो भी देखिए कहीं प्रकाश की एक किरण जरूर दिखाई देगी। जब तक शरीर का एक भी तंतु सजीव है, तब तक हार मानना ठीक नहीं। सच्चे मनुष्य

मृत्यु की आखिरी साँस तक परिस्थितियों से लड़ते हैं। हम भी फिर हार क्यों मान बैठें ?

भाग्य और कुछ नहीं—कल का पुरुषार्थ ही आज का भाग्य बनता है। इस तरह मनुष्य अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा भाग्य को भी बदल सकता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

आत्मिक शक्तियों को जगाना मनुष्य का प्रमुख धर्म है। आत्मा के गहन अंतराल में वह शक्तियाँ भरी हैं, जिनका यदि उत्कर्ष हो जाए तो मनुष्य असामान्य परिणाम इसी जीवन में उपलब्ध कर सकता है। सच्चाई, ईमानदारी और कर्मठता को जगाकर मनुष्य इन शक्तियों की समीपता अनुभव कर सकता है। पुरुषार्थ के लिए सर्वोपरि साहस चाहिए तथा अच्छे-बुरे कैसे भी परिणाम को सहने के लिए उच्चकोटि का धैर्य चाहिए। ऐसा जीवन किसी का बन जाए तो कठिनाइयाँ उसका रास्ता न रोक सकेंगी। वह दिनों दिन सफलताओं की ओर बढ़ता ही चला जाएगा।

अपनी शक्तियों का सदुपयोग मनुष्य को स्वयं करना चाहिए। दूसरों के भरोसे बैठना निकम्मापन है, ईश्वर की सहायता माँगने का अधिकार तब मिलता है, जब हम स्वावलंबी हों। उन्हीं की भगवान मदद भी करता है, जो अपनी मदद खुद करते हैं। अपने पाँवों खड़ा होकर ही मनुष्य उन्नति कर सकता है। पुरुषार्थ मनुष्य जीवन की पहली आवश्यकता है। इसके बिना किसी तरह की उन्नति संभव नहीं है। संघर्ष और सफलता का संबल पुरुषार्थ ही है।

छोटी किंतु महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान रखें

जीवन की सफलता-असफलता पर हमारे व्यवहार की छोटी-छोटी बातों का भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। छोटी-छोटी आदतें स्वभाव की जरा-सी विकृति, रहन-सहन का गलत ढंग आदि सामान्य-सी बातें होने पर भी मनुष्य की उन्नति, विकास, सफलता के मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ी हो जाती है किंतु इनका सुधार न करके

लोग अपनी असफलताओं को दूसरे कारण गढ़कर अपने आपको संतुष्ट करने का असफल प्रयास करते हैं।

दूसरों पर पड़ने वाला प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व को संसार में रास्ता देता है। मनुष्य के व्यवहार, बातचीत, जीवन, तौर-तरीकों एवं व्यवहारिक पहलुओं के आधार पर ही समाज उसके प्रति अपनी राय निर्धारित करता है, जिसका मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। समाज में उच्च स्थान और उसका सहयोग पाकर मनुष्य बहुत बड़ी सफलता अर्जित कर सकता है। समाज से तिरस्कृत और दूर हटकर मनुष्य, जीवन की सभी बाह्य संभावनाओं से वंचित भी हो जाता है। अतः सामान्य भूलों, स्वभाव की विकृति, रहन-सहन, बोल-चाल का फूहड़पन एवं अन्य भद्दे तौर-तरीकों में सुधार करना आवश्यक है।

कई लोग उत्तेजित स्वभाव के होते हैं। बात-बात पर, हर समय व्यवहार में उत्तेजित होने वाले मनुष्य सहज ही दूसरों से लड़ाई-झगड़ा कर लेते हैं। किसी बात पर ऐसे लोग ठंडे दिमाग से विचार नहीं कर पाते। इसी तरह कई व्यक्ति इस तरह के होते हैं कि मन ही मन किसी सोच-विचार, मानसिक उलझन से परेशान रहते हैं। उनके चेहरे पर क्लांति, द्वंद्व-बेचैनी के भय झकलते रहते हैं। कइयों को आत्म-विश्वास का अभाव, हीनता की भावना, घबराहट आदि ही असंतुलित बना देते हैं। इस तरह की सभी बातें मनुष्य की मानसिक अस्वस्थता की परिचायक हैं, जो जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में प्रकट होती रहती है। इससे प्रभावित होने वाले दूसरे लोगों की अच्छी राय नहीं बनती। कोई भी समझदार आदमी उत्तेजित, हीन भावना युक्त, अंतर्द्वंद्व में परेशान, क्लांत व्यक्ति को अपने काम में लगाना या साथ रखना पसंद नहीं करेगा। ये सभी बातें सामान्य-सी लगती हैं किंतु किसी भी क्षेत्र में सफल होने के लिए ये बहुत बड़ी बाधक हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही अपने आप एक चलता-फिरता बोलता विज्ञापन है। यह भी सच है कि विज्ञापन जैसा होगा उसका प्रभाव भी

वैसा ही पड़ेगा। बात-चीत, वेश-भूषा, रहन-सहन से मनुष्य का व्यक्तित्व प्रदर्शित होता है। जिन बुरी आदतों से अपना गलत विज्ञापन हो, अपना फूहड़पन, बेवकूफी जाहिर हो उन्हें छोड़ने का प्रयत्न करना आवश्यक है।

कई लोग दूसरों के सामने नजर से नजर मिलाकर बात-चीत करने में झिझकते हैं। कई तो बात-चीत करते हुए कपड़ों के छोर ऐंठने लगते हैं, कई तिनका उठाकर जमीन कुरेदने लगते हैं, कई मुँह में अँगुली देकर नाखून चबाते हैं। इनका प्रभाव दूसरों पर अच्छा नहीं पड़ता। इससे व्यक्तित्व का खोखलापन, क्षुद्रता जाहिर होती है। समाज में ऐसे लोगों को महत्त्व नहीं मिलता और न अच्छी श्रेणी के लोगों में समझा जाता है इस तरह झिझकने वाले, कमजोर मनोभूमि के लोगों से किसी बड़े काम के संपादन की आशा भी नहीं की जा सकती।

बात-चीत का स्तर भी मनुष्य के प्रभाव, व्यक्तित्व को प्रकट करता है। ज्यादा चुप रहने वाले अथवा अधिक बोलने वाले दोनों ही तरह के लोग अच्छे नहीं समझे जाते। आवश्यकतानुसार ठोस और नपी-तुली बातचीत करना मनुष्य के व्यक्तित्व का वजन बढ़ाती हैं। बिना सोचे-समझे, ऊटपटांग, भाषा की अशुद्धता, अशिष्टता, जोर-जोर से बातें करना, बीच में ही किसी को टोक देना, बेमौके बात करना, अपनी ही अपनी कहते जाना बातचीत के दोष हैं। बातचीत में अपने ही विषय, अनुभवों की भरमार रखना, दूसरों को मौका न देना, किसी की बहिन बेटी के सौंदर्य की चर्चा, परनिंदा आदि से मनुष्य के ओछेपन का अंदाजा कोई भी सहज ही लगा सकता है। बातचीत के इन दोषों के कारण कोई भी व्यक्ति अपनी अच्छी राय कायम नहीं कर सकता। समाज में भी ऐसे व्यक्ति को कोई महत्त्व नहीं मिलता। इनसे दूसरों पर अच्छा प्रभाव न पड़कर बुरा ही पड़ता है। इससे मनुष्य की उन्नति सफलता दूर की बात बनकर रह जाती है।

कई लोग ठीक और सही बात भी बड़ी कर्कशता और रूखेपन के साथ कहते हैं। कई उपदेशक प्रेम, मैत्री, दया का उपदेश देते हैं, दूसरों की प्रशंसा आदर्शों की बातें कहते हुए भी ऐसे लगते हैं मानो ये किसी से लड़ रहे हैं। आवाज की इस कर्कशता को दूर करना भी आवश्यक है। बातचीत में मधुरता, गंभीरता, स्पष्टता, व्यवस्था रखने से दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। साधारण योग्यता वाले भी अपनी बातचीत की मधुरता से बड़े-बड़े काम निकाल सकते हैं किंतु अपने उक्त दोषों को दूर न करने वाले यही शिकायत करते पाए जाते हैं—"क्या करें हम लोगों से अच्छी बात कहते हैं, उनका हित चाहते हैं, फिर भी लोग हमें बुरा समझते हैं, हमसे दूर रहने का प्रयत्न करते हैं।" इसका कारण दूसरे लोगों का इस तरह का व्यवहार नहीं अपितु कर्णकटु, रूखी बातचीत करना ही है।

कई लोग धर्म, अध्यात्म, समाज, मानवता की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। बातों में, विचारों में, आकाश कुसुमों को तोड़ने में नहीं चूकते, किंतु धरती पर काम में आने वाली छोटी-छोटी बातों पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। फलतः वे न जमीन के रहते हैं न आसमान के, उनका कोई महत्त्व कायम नहीं होता। जिनके वस्त्र, अस्त-व्यस्त हों, बाल-बिखरे हुए हों, खाने, पीने, बैठने, रहने का कोई ढंग नहीं, जिनकी जीवन पद्धति में कोई व्यवस्था क्रम न हो, उल्टा फूहड़पन, भद्दापन टपकता हो ऐसे व्यक्ति न कोई महत्त्वपूर्ण कार्यों का संपादन ही कर सकते हैं न किसी क्षेत्र में विशेष सफलता अर्जित कर सकते हैं।

किसी भी तरह के चारित्रिक, व्यवहारिक दोष मनुष्य को असफलता और पतन की ओर प्रेरित कर सकते हैं। समाज में उसका मूल्य, प्रभाव, नष्ट कर सकते हैं। महान पंडित, विज्ञानी, बलवान रावण केवल अपने अहंकार और परस्त्री आसक्ति में ही नष्ट हो गया। सारे समाज यहाँ तक कि पशु-पक्षियों तक ने उसका विरोध किया। इसी तरह इतिहास के पृष्ठों पर लिखी पतन की कहानियों में

मनुष्य की चारित्रिक हीनता ही प्रमुख रही है। चरित्र और व्यवहार की साधारण-सी भूलें मनुष्य की उन्नति विकास का रास्ता रोक लेती हैं।

कई लोग बिना किसी बात के अथवा सामान्य-सी घटनाओं में ही मुँह फुलाकर उदास, मनहूस से देखे जाते हैं, जो वातावरण में भी मुर्दनी, नैराश्य की विवशता, पराजय, भयंकरता को पैदा करते हैं किंतु एक ओर ऐसे भी लोग होते हैं, जो अपनी प्रसन्नता, मुस्कराहट, आशाभरी हँसी से एक सजीव सुंदर, उत्कृष्ट वातावरण का निर्माण करते हैं। केवल मनुष्य के दृष्टिकोण और जीवन जीने की इच्छा शक्ति का अंतर है। यह तो ध्रुव सत्य है कि दुःख-दर्द, उदासी तो सभी के पास आती-जाती रहती है। समाज उन्हें ही तरजीह देता है जो उसे हँसी, मुस्कराहट, प्रसन्नता, सरसता दे सकें। श्मशान में भी नवजीवन युक्त कुसुमों की कली खिला सकें, भयंकरता में सौंदर्य, प्रसाद, मृदुता का सृजन कर सकें। हर वक्त अपने दुःखों, परेशानियों, अभावों का रोना रोने वाले से लोग अपना पीछे छुड़ाना चाहेंगे क्योंकि इनकी तो दूसरों के पास भी कमी नहीं होती।

सामाजिक सहयोग, लोगों की सहायता तथा अपने क्षेत्र में सफलता से वंचित होने का एक बड़ा कारण है, प्रत्येक बात में दूसरों की आलोचना करना। दरअसल कई लोगों को ऐसी प्रवृत्ति ही होती है, जिसमें चाहे कैसा भी वातावरण हो आलोचना किए बिना उन्हें तृप्ति ही नहीं मिलेगी। हर समय, हर बात को आलोचना की कसौटी पर कसना अच्छी बात नहीं, इससे लोग दूर हटने की कोशिश करते हैं और मनुष्य दूसरों के कई अनुभव, महत्त्वपूर्ण जानकारी, विचार, ज्ञान से वंचित रहता है।

ये छोटी-छोटी बातें मनुष्य की उन्नति में बहुत बड़ी बाधक बन जाती हैं। इनके सुधार के लिए सदा ही प्रयत्न करते रहना चाहिए।

कई बार असफलताओं का कारण इन छोटी-छोटी बातों की उपेक्षा ही होती है। इस उपेक्षा के कारण काम की व्यवस्था पर तथा

कार्य से संबंधित अन्य व्यक्तियों पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उसी के परिणामस्वरूप असफलता सामने आती है। यह तथ्य न समझने वाले लोग अपने प्रयासों के बावजूद विफल रह जाने का कारण भाग्य, देवी-देवता आदि को या दूसरों द्वारा उत्पन्न की गई ज्ञात-अज्ञात बाधाओं आदि को मान लेते हैं। उन्हें लगता है कि सदा ऊँचे विचार और अच्छे इरादे रखने पर भी हमें सफलता नहीं मिली, तो इसका कारण किसी रहस्यमय सत्ता का विधि-विधान है।

दूसरी ओर छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने वाले जागरूक, तत्पर एवं रचनात्मक दृष्टिकोण वाले लोग असफलताओं के बीच भी सफलता के नए मार्ग ढूँढ़ निकलाते हैं और उस हेतु व्यापक सहयोग-संबल प्राप्त कर लेते हैं।

❐ ❐

सफलता आपका जन्मसिद्ध अधिकार है

संसार में उन्नति करने और सफलता पाने की असंख्यों दिशाएँ हैं। असंख्यों लोग उनमें बढ़ते और सफल होने का प्रयत्न करते रहते हैं, किंतु कुछ लोग देखते ही देखते मालामाल होकर सफल हो जाते हैं और कुछ चींटी की चाल से रेंगते और तिल-तिल बढ़ते हुए जीवन भर उतनी दूर तक नहीं जा पाते जितनी दूर अन्य बहुत-से लोग दो चार साल में पहुँच जाते हैं।

दो समान एवं सामान्य स्थिति के व्यक्ति व्यापार क्षेत्र में एक साथ उतरते हैं। एक घोड़े की चाल से दौड़ता हुआ शीघ्र ही बड़ा व्यापारी बन जाता है और दूसरा छोटा-सा ही रह जाता है। यदि इसे भाग्य चक्र की गति कह दिया जाए तो कर्म, परिश्रम एवं उद्योग की मान्यता उठ जाती है, जिसे किसी अंध-विश्वासी, आलसी तथा

अभाग्यवादी के सिवाय कोई विवेकशील व्यक्ति स्वीकार करने को तैयार न होगा।

दोनों दुकानदार परिश्रमी तथा पुरुषार्थी रहे हैं। कभी कोई क्षण आलस्य अथवा प्रमाद में नहीं खोया। प्रत्येक क्षण अपनी उन्नति एवं विकास में लगाते रहे। तब भी एक छोटा-सा दुकानदार बना रहा और दूसरा आँधी तूफान की तरह बढ़कर, एक बड़ा व्यवसायी, एक धनवान, पूँजीपति और लंबे-चौड़े कारोबार वाला बन गया। उसकी फर्म स्थापित हो गई, बैंकों में खाते खुल गए। टेलीफोन लग गया और मुनीम रोकड़िये काम करने लगे। अभी एक बेचारा अपने छोटे-से मकान की नींव भी नहीं डाल पाया था कि दूसरे की कोठियों पर मंजिलें चढ़ने लगीं दरवाजे पर कार खड़ी हो गई। निश्चय ही ऐसा लगता है कि उन दोनों में से एक सफल हो गया और दूसरा असफल रह गया।

स्वाभाविक है कि इस उन्नति एवं सफलता को देख-सुनकर इच्छा हो कि उसकी उस गतिमान सफलता का रहस्य पता चल जाता जिसे अपनाकर उन्नति की दिशा में अग्रसर होने का प्रयत्न किया जाए। धन, संपत्ति और वैभव-विभव के साथ जीवन को सफलता के ऊँचे शिखर पर कल्लोलं करते देखा जाए, किंतु विश्वास है कि इस घोड़े की चाल से आने वाली सफलता का रहस्य जानकर कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य उसे दूर से ही हाथ जोड़कर उसके विपरीत असफलता को सहर्ष स्वीकार कर लेगा।

आँधी-तूफान की तरह आने वाली सफलता का रहस्य जानने के लिए एक सरकारी ठेकेदार का उदाहरण ले लीजिए। वह अपना कार्य किसी ठेकेदार के पास मजदूरों की कारगुजारी देखने और लिखने के काम से शुरू करता है। मालिकों को दिखाने के लिए मेहनत करने का अभिनय तो करता है, पर साथ ही मजदूरों से मिला रहता है। किसी को आराम देकर अथवा अधिक पैसा दिलाकर कमीशन लेता है। इमारत के मसाले में गड़बड़ी करके मालिक के

मुनाफे में सहायक होता है, साथ ही मौका पाकर मालिक के सामान पर हाथ साफ करता है। मजदूरों की कारगुजारी और हाजिरी में हेर-फेर करके या तो उन्हें परेशान करके नाजायज लाभ उठाता है या सीधे-सीधे मजदूरी मार लेता है। सामान सप्लायरों से मिलकर कमीशन तय करता और घटिया माल की खपत करा देता है। अफसरों को खुश करने के लिए चाटुकारी तो करता ही है, साथ ही मालिक से रिश्वत दिलवाकर खुद भी फायदा उठाता है। इस प्रकार अपनी आर्थिक आय के अनेक स्रोत खोलकर उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस बीच उसे हजारों बार मजदूरों के कोप तथा आक्रोश भाजन बनना पड़ता है। मालिक से डाट और अफसरों से अपमान प्राप्त करता है। नौकरी से अलग होने की नौबत आती है तो खुशामद करना, पैर पकड़ना और गिड़गिड़ाना काम आता है।

धीरे-धीरे छोटे-मोटे ठेके लेकर काम आगे बढ़ाता है। रिश्वत, बेईमानी असत्य और कपट की नीति से पैसा पैदा करके बड़ा ठेकेदार बन जाता है। फिर क्या राष्ट्र की संपत्ति हड़पता और सरकारी सड़कों, भवनों आदि में खोटा माल लगाकर खरे पैसे लेता है। कमजोर और अनुपयुक्त निर्माणों को रिश्वत के बल पर पास कराता और मालामाल बन जाता है। यह है वह रहस्य जिसके आधार पर अनेक लोग घोड़े की चाल चलकर बड़े आदमी बन जाते हैं और कोठी, कार, रेडियो, बंगले की चमक-दमक में सफल दिखाई देते हैं। आत्मा से लेकर राष्ट्र तक और लोक से लेकर परलोक तक की हानि कर बढ़ने वाले व्यक्तियों को यदि सफल माना जा सकता है तो फिर संसार में असफल व्यक्ति किसे कहा जा सकता है—यह बात विचारणीय है। ऐसे आदर्श एवं आचरणहीन व्यक्तियों को वे लोग ही सफल मानकर प्रशंसा एवं स्पृहा कर सकते हैं जो या तो सफलता का अर्थ नहीं जानते या फिर उसी मनोवृत्ति के होते हैं। आर्थिक स्वार्थ के लिए आत्मा, स्वाभिमान, मनुष्यता तथा राष्ट्र के हित को बलिदान कर देने के बाद भी जिसे संतोष और प्रसन्नता होती है, उन्हें मनुष्य की श्रेणी में गिनने में संकोच ही होना चाहिए।

इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति जिस काम में उतरता है, उसे ईमानदारी से करता है। न तो स्वयं अनुचित लाभ उठाता है और न दूसरे के लिए सहायक हो पाता है। नौकरी में मालिक के प्रति ईमानदार रहता है, हर प्रकार से उसके हित का ध्यान रखता है, किंतु अनुचित लाभों में सहायक नहीं हो पाता। निदान कोई उन्नति किये बिना यथास्थान पड़ा रहता है। धीरे-धीरे अपनी शुभ कमाई से मितव्ययितापूर्वक कुछ बचाता रहता है और जब थोड़ा-सा पैसा हो जाता है, तब काम को आगे बढ़ाता है। वह घूस देकर किसी दूसरे का अहित नहीं करता और न एक के बदले चार पाने का लोभ करता है; आत्मा, स्वाभिमान, राष्ट्र तथा मानवता की रक्षा करता; लोक-परलोक के रास्ते में काँटें नहीं बोता और थोड़े में संतोष करता है। ऐसे ईमानदार तथा आदर्श एवं आचरणवान व्यक्ति का उन्नति की गति धीमी होना स्वाभाविक है। वह कहीं जिंदगी भर की कमाई में रहने योग्य एक अच्छा मकान बनवा पाता है। बैंक बैलेन्स, ऊँचा फर्म, लंबा चौड़ा कारोबार उसकी कल्पना एवं कामना के बाहर की बातें रहती हैं और यदि इनकी उपलब्धि होती भी है तो एक लंबे अरसे और कठिनतम परिश्रम के बाद, देखते-देखते नहीं। लगभग जीवन की पूरी अवधि सामान्य स्थिति और साधारण कारोबार में ही व्यय हो जाती है। देखने वालों को असफल एवं अनुन्नत व्यक्ति ही दीखता है किंतु वास्तव में वह कितना सफल व्यक्ति होता है, इसे विवेकशील व्यक्ति ही समझ पाते हैं।

आर्थिक प्रचुरता, व्यापारिक उन्नति एवं सामाजिक स्थिति को उसी दशा में सफलता की सूचक कहा जा सकता है, जबकि यह उपलब्धियाँ निष्कलंक तथा स्थिर सुख संतोष की देने वाली हों। जिन्हें देखकर अपने पवित्र पुरुषार्थ निर्विकार आचरण, सत्य व्यवहार और आंतरिक ईमानदारी का आत्मगौरव अनुभव हो। यदि यह उपलब्धियाँ अपने अन्याय, अनौचित्य, असत्य अथवा अनाचरण की याद दिलाकर आत्मग्लानि, हीन भावना, अपराधी-भाव का कारण बनती है और उनसे वांछित एवं वास्तविक हर्ष की प्राप्ति नहीं होती

है तो निश्चय ही वे 'सफलता' जैसे शब्द की अधिकारिणी नहीं बन सकती है। सफलता की कसौटी आदर्श रक्षा है—आर्थिक प्रचुरता नहीं।

ठेकेदार की तरह ही सफलता-असफलता का सच्चा स्वरूप समझने के लिए किन्हीं दो दुकानदारों का उदाहरण लिया जा सकता है। एक दुकानदार खाद्य पदार्थों में मिलावट करता है। कम तोल कर देता है। अधिक पैसे लेता है। चोरबाजारी करता है। ज्यादा दाम देने वाले के हाथ बेचता है। होते हुए चीज के लिए इन्कारी कर अभाव पैदा करता है और महँगाई बढ़ाता है। भोले अनजान व्यक्तियों को ठगता है। इस प्रकार के जाने कितने अनुचित उपायों द्वारा पैसा कमाकर कोठी खड़ी करता है। बड़ी फर्म का मालिक बनता है। अपनी अनुचित कार्यवाहियों के लिए समाज में शंका, संदेह तथा अपवाद का विषय बनता है। पुलिस का डर, कानूनों और हुक्कामों का भय उसे रात-दिन चैन नहीं लेने देता। आय एवं बिक्रीकर की चोरी करने के लिए दुहरा कागज रखता और उन्हें कहाँ रखूँ ? कहाँ छिपाऊँ के चक्कर के परेशान रहता है। रहस्यवाद मुनीमों तथा नौकरों से अपराधी की तरह डरता है। कभी-कभी जेल हवालात की हवा भी खानी पड़ती है। सरेआम शोषित व्यक्तियों द्वारा अपमानित होने की हर समय संभावना बनी रहती है और इस प्रकार जिंदगी एक बवाल बन जाती है। इतनी चिंताओं भयों तथा अवहेलनाओं के साथ पाया हुआ धन, जमा की हुई संपत्ति यदि सफलता की सूचक हो सकती है तो फिर असफलता को किन लक्षणों से जोड़ा जाएगा।

इसके विपरीत एक दुकानदार, स्पष्ट एवं औचित्यवान रहता है। कमाई कम होती है किंतु बाजार में साख है, ग्राहक विश्वास करते हैं। आत्म संतोष के साथ सिर ऊँचा करके चलता है, कोई ऊँगली नहीं उठा पाता बाहर-भीतर से साफ-सुथरा है। उचित बीज ही देता है। न तो समाज में निंदा का भय और न हाकिम हुक्कामों का डर।

स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सब प्रशंसा करते और सद्भावना रखते हैं। पहले उसी की दुकान पर जाते, तब कहीं मजबूरी से दूसरे के यहाँ। बाजार के बड़े, किंतु बेईमान व्यापारियों के बीच हीरे की तरह दमकता रहता है, लोकरंजन और लोकप्रियता के बीच व्यापार करता है। थोड़ा किंतु शुद्ध सामान रखता, न कभी किसी को कम देता और न बुरा सुनाता है। ऐसे स्वच्छ तथा निर्लिप्त दुकानदार को यदि सफल नहीं कहा जा सकता तो फिर आर्थिक क्षेत्र में सफल कहा जाने योग्य कोई भी नहीं माना जा सकता। सफलता का वास्तविक मापदंड अधिकता नहीं औचित्य ही है। अधिकता को औचित्य की तुलना में सफलता कहने वाले अपनी अविवेकशीलता को ही व्यक्त करते हैं।

दो विद्यार्थी परीक्षा देते हैं। उनमें से एक पास हो जाता है और दूसरा फेल। फेल होने वाला विद्यार्थी साल भर पढ़ता रहा यथासाध्य अध्ययन में कमी नहीं की, किंतु किन्हीं विशेष कारणों अथवा संयोगवश फेल हो जाता है। दूसरा पास होने वाला विद्यार्थी साल भर खेलता-कूदता और मटरगस्ती करता रहा। किताब को हाथ नहीं लगाता किंतु परीक्षा में नकल द्वारा अथवा अन्य अनुचित उपायों से पास हो जाता है। तो क्या यह सफल और वह असफल माना जाएगा ? नहीं ! ऐसा माना जाना गलत होगा। नकल द्वारा अथवा अनुचित उपायों के आधार पर पास हो जाने पर वह असफल ही माना जाएगा और पढ़ने तथा परिश्रम करने के बाद भी संयोगवश फेल हो जाने वाला उसकी तुलना में सफल ही माना जाएगा।

सफलता की कसौटी परिणाम नहीं बल्कि वह मार्ग, वह उपाय, वह साधन और वह आधार है उन्नति एवं विकास के लिए जिन्हें अपनाया और काम में लाया गया है। इस विवेचना के प्रकाश में, सफलता के आकांक्षी की अपनी समझ है, कि वह सरल एवं क्षिगति की स्वीकृति देता है अथवा पुरुषार्थ पूर्ण धीरे-धीरे आने वाली सफलता को।

❑ ❑

अपने जन्म-सिद्ध अधिकार—सफलता का वरण कीजिए ?

मनुष्य की असफलता के कारणों में एक कारण अयोग्यता भी है। जिसने किसी काम को करने का सही ढंग सीखने में प्रमाद किया है, उसकी रीति-नीति के संबंध में ज्ञान अर्जित करने का कष्ट नहीं उठाया है, वह उस काम को ठीक से अंजाम दे सकने की आशा अपने से नहीं रख सकता। यदि वह हठ अथवा लोभ के वशीभूत उस काम को हाथ में ले भी लेगा तो दूसरों के साथ अपनी दृष्टि में भी उपहासास्पद बन जाएगा किसी काम को सफलतापूर्वक करने के लिए तत्संबंधी योग्यता का होना नितांत आवश्यक है।

योग्यता किसी दैवी वरदान के रूप में नहीं मिलती। वह एक ऐसा सुफल है, जिसकी प्राप्ति परिश्रम एवं पुरुषार्थ के पुरस्कार स्वरूप ही होती है। जो आलसी है, अकर्मण्य हैं, काम करने में जिनका जी नहीं लगता, परिश्रम के नाम से जिन्हें पसीना आ जाता है, वे किसी विषय में समुचित योग्यता अर्जित कर सकते हैं, ऐसी आशा दिवा-स्वप्न के समान मिथ्या सिद्ध होगी। योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ द्वारा ही संभव है।

किसी विषय में सफलता हस्तगत करने के लिए, उस विषय की पर्याप्त योग्यता का होना आवश्यक है और योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ पर निर्भर है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सफलता का मूलभूत हेतु परिश्रम एवं पुरुषार्थ ही है।

जिनको संसार में कुछ सराहनीय कर दिखने की इच्छा है, अथवा जो चाहते हैं कि सफलताएँ उनके जीवन का शृंगार करें उन्हें चाहिए कि पूरे तन-मन और पूरी सच्चाई के साथ अपने में परिश्रम

तथा पुरुषार्थ का स्वभाव विकसित करें। एक बार ध्येयपूर्वक परिश्रमी स्वभाव का विकास कर लेने पर, फिर वह ऐसा सहज स्वभाव का बन जाता है कि किसी के लिए अकर्मण्य रहकर कुछ क्षण बिता सकना भी पहाड़ बन जाता है।

कर्मण्य स्वभाव वाला व्यक्ति इतना कर्मशील बन जाता है यदि विवशतावश उसे एक-आध दिन निकम्मा होकर बैठना पड़े तो उसके लिए वह समय कारावास की दुःखदाई स्थिति से कम नहीं होता। परिश्रमी स्वभाव वाला व्यक्ति एक क्षण के लिए भी बेकार नहीं बैठ सकता। उसे काम करने की आवश्यकता उसी प्रकार अनुभव होती है जिस प्रकार भूख लगने पर खाने की आवश्यकता। भूख लगने पर जब तक कि कुछ खा न लिया जाए तब तक चैन नहीं पड़ता उसी प्रकार परिश्रमी स्वभाव वाला व्यक्ति काम के अभाव में तब तक बेचैन बना रहता है, जब तक कि उसे मनमाना काम करने को नहीं मिल जाता। जिसने स्वभाव को इसी सीमा तक परिश्रमी एवं पुरुषार्थी बना लिया है, मानना होगा कि उसने अपने भाग्य का निर्माण कर लिया है और सफलता की जयमाला लेकर विचरण करने वाले देवदूतों को अपनी ओर आकर्षित करने की योग्यता उपलब्ध कर ली है।

जिन सुविधाजनक परिस्थितियों को प्रारब्ध की संज्ञा दी जाती है, जिन साधनों और उपादानों को मानव जीवन की सफलता का सहायक माना जाता है और जो सौभाग्य फलों के रूप में जन-जन को स्पृहणीय होते हैं, वे सब परिश्रम एवं पुरुषार्थ के पुरस्कार के सिवाय और कुछ नहीं होते। 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है'—इस सूक्ति वाक्य को कर्मठ व्यक्तियों ने, पुरुषार्थ द्वारा, असंभव को संभव सिद्ध करके विचारों को, संसार के सम्मुख एक सिद्ध मंत्र के रूप में प्रस्तुत करने के लिए विवश कर दिया। सुख-दुःख, हानि-लाभ, सफलता दैवाधीन हैं, इनमें मनुष्य की गति नहीं है—इस प्रकार की भावना आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में भले ही कुछ अर्थ रखती हो किंतु भौतिक धरातल पर इसका अधिक महत्त्व नहीं माना जा सकता। यदि इस दार्शनिक भावना को देशकाल और परिस्थितियों का

विचार किए बिना सामान्य जीवन क्रम में प्रवृत्त कर दिया जाए तो निश्चय ही संसार का विकास अवरुद्ध हो जाए और इस कर्म-लोक में अकर्मण्यता का साम्राज्य स्थापित होते देर न लगे। लोग असमय में अकारण ही उक्त भावना का बहाना लेकर कंधा डाल दें और तब सब संसार का यह सक्रिय स्वरूप वैसे ही समाप्त हो जाए जैसे पक्षाघात का आक्रमण होने पर चलते-फिरते मनुष्य की गति स्थगित हो जाती है।

कभी-कभी देखा जाता है कि प्रयत्न करने पर भी कुछ लोग वांछित सफलता नहीं पाते और तब दृष्टिकोण में इस भ्रम की संभावना हो उठती है कि प्रयत्न और पुरुषार्थ व्यर्थ है, मनुष्य का भाग्य ही प्रबल होता है किंतु यह भ्रम सर्वथा भ्रम ही है, सत्य का इससे दूर का भी संबंध नहीं होता। ऐसे प्रयत्नशील व्यक्ति की असफलता को लेकर भाग्यवाद में आस्था की स्थापना करने लगना मानसिक निर्बलता का लक्षण है। निश्चय ही उस असफल व्यक्ति के प्रयत्न में कुछ न कुछ खोट अथवा कमी रही होगी, जिससे कि उसे उस समय असफलता का मुँह देखना पड़ा। यदि प्रयत्न पूरा और सावधानी के साथ किया जाए तो किसी के आने का अवसर ही शेष नहीं रह जाता। पूरा और सुचारु प्रयत्न सफलता की एक ऐसी गारंटी है जो कभी असिद्ध नहीं हो सकती।

किसी एक प्रयत्न से कोई निश्चित सफलता मिल ही जाए, यह आवश्यक नहीं। सफलता के लिए कभी-कभी प्रयत्नों की परंपरा लगा देनी होती है। परिश्रम एवं पुरुषार्थ के रूप में उसका उतना मूल्य चुका ही देना होता है जितना उसके लिए अनिवार्य है। एक बार असफलता का सामना हो जाने पर किसी को असफल मान लेना उसके साथ अन्याय करने के समान है। संसार में लिंकन जैसे हजारों व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने सैकड़ों बार असफल होकर भी, अंत में अभीष्ट सफलता का वरण कर ही लिया सच्चा पुरुषार्थी वास्तव में वही है, जो बार-बार असफलता को देखकर भी अपने प्रयत्न में शिथिलता न आने दें और हर असफलता के बाद एक नए उत्साह

से सफलता के लिए निरंतर उद्योग करता रहे। जो पत्थर एक आघात में नहीं टूटता उसे बार-बार के आघात से तोड़ा ही जा सकता है।

असफलता को अंगीकार करने का अर्थ है निराशा को निमंत्रण देना। निराशा के दुष्परिणामों के विषय में अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। निराशा की भावना को यदि नागपाश की भाँति कह दिया जाए तो कुछ अनुचित न होगा। निराशा मनुष्य की क्रियाशीलता पर सर्प की भाँति लिपटकर न केवल उसकी गति ही अवरुद्ध कर देती है प्रत्युत् अपने विषैले प्रभाव से उसके जीवन तत्त्व को भी नष्ट करती रहती है।

यह अधिक अस्वाभाविक नहीं है कि असफलता की स्थिति में कभी-कभी निराशा मनुष्य के विचारों पर अपनी काली छाया डालने का साहस कर ही जाती है, किंतु उस छाया को देर तक ठहरने न देना चाहिए। यदि यह गलती की जाएगी तो वर्तमान पर ही नहीं भविष्य पर भी उसका दूरगामी कुप्रभाव पड़े बिना न रह सकेगा। वे सारे स्वप्न, सारी स्वर्ण कल्पनाएँ, जिनको मूर्तिमान करने की आकांक्षा लेकर अपने कर्म क्षेत्र में कदम बढ़ाया है सहसा धूमिल पड़ जाएँगी। व्यक्ति का आत्मविश्वास उत्साह और साहस धीरे-धीरे साथ छोड़ने लगेगा। विचारों के माध्यम से जीवन क्षितिज पर अंधकार घनीभूत हो उठेगा और तब कुंठा और कायरता के सिवाय उनके पास कुछ भी तो शेष न बचेगा। इसलिए बुद्धिमानी इसी में है कि असफलता के साथ निराशा को जोड़कर ऐसी हानि न की जाए जो कभी पूरी न हो सके।

इस अनुभव सिद्ध सत्य को स्वीकार कर लेने में यह प्रकार से हित ही हित है कि निरंतर काम में जुटा रहना निराशा का सर्वश्रेष्ठ और सृजनात्मक उपचार है। काम में संलग्न रहने से मन की सारी वृत्तियाँ एकाग्रता के साथ उस काम की ओर ही प्रवृत्त रहती हैं। विचारों का प्रभाव कार्य के साथ चलता रहता है। इस संलग्नता के

कारण विचारों में ऐसा कोई स्थान रिक्त नहीं रहता, जहाँ आकर निराशा अपना अधिकार जमा सके। जहाँ अकर्मण्यता की स्थिति में निराशा के विचार मस्तिष्क को घेरने लगते हैं, वहाँ इसके विपरीत सक्रियता की स्थिति में सृजनशीलता के कारण आशापूर्ण विचारों का उदय होता चलता है।

जीवन में सफलता की आकांक्षा रखने वालों को चाहिए कि सामायिक असफलता को चुनौती की भाँति स्वीकार करें और अपनी सृजन-शक्ति के बल पर असफलता की पोषक निराशा को पास फटकने दें। जिसने निराशा से दूर रहकर असफलता को सफलता में बदल देने का संकल्प लेकर अपने उद्योग को और अधिक बढ़ा दिया होता है, उसने मानो दूर तक अपनी मंजिल का मार्ग स्पष्ट और निरापद बना लिया होता है।

सफलता के मार्ग में कठिनाइयों का आना असंभव नहीं क्योंकि उनका आना स्वाभाविक है। जिस मार्ग में कोई कठिनाई नहीं जिस पर विरोध अथवा अवरोध की संभावना नहीं, वह मार्ग किसी महान ध्येय की ओर जा रहा है—ऐसा मान लेने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। आज तक के प्रत्येक महापुरुष का जीवन बतलाता है कि महानता की ओर जाने वाला आज तक ऐसा कोई भी अन्वेषण नहीं किया जा सका जिस पर कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। बीच-बीच में आने वाली कठिनाइयाँ इस बात की ज्वलंत साक्षी हैं कि अमुक मार्ग किसी असामान्य एवं उत्तम ध्येय की ओर जाता है।

अपने ध्येय मार्ग पर विघ्न-बाधाओं को देखकर अनेक लोग हतोत्साह हो उठते हैं। ऐसे व्यक्तियों को यह मान लेने में संकोच न करना चाहिए कि किसी महान् सफलता को वरण करने की उनकी आकांक्षा परिपक्व नहीं है। इस प्रकार की आकांक्षा जिनके हृदय में लगन बनकर लगी होती है, वे हँसते-खेलते विघ्न-बाधाओं से टक्कर लेते हुए साहसपूर्वक अपने ध्येय मार्ग पर बढ़ते चले जाते हैं। मार्ग

की कठिनाइयों से टकराने में जिस आत्मिक आनंद की उपलब्धि होती है, उसे पाने के अधिकारी ऐसे पुरुषार्थी पुरुषों के सिवाय और कौन हो सकता है ?

ध्येय मार्ग का कोई भी सच्चा पथिक इस सत्य के समर्थन में उत्साह प्रकट किए बिना नहीं रह सकता कि मार्ग में यदि कठिनाइयों से टकराने का अवसर न मिले तो असहनीय नीरसता का समावेश हो जाए और वह नीरसता लक्ष्य पर पहुँचकर दूर नहीं हो सकती। किस समरसता के साथ मंजिल पर कौन-सी नवीनता, कौन-सा संतोष और हर्ष उपलब्ध हो सकता है ! यह मार्ग की बाधाएँ दूर करने में किए गए संघर्ष की ही विशेषता है, जो मंजिल पर पहुँचकर विश्राम संतोष और आनंद के रूप में अनुभव होती है। प्रगति का वास्तविक आनंद इसी में है कि कठिनाइयों का संयोग आता रहे और उन पर विजय प्राप्त की जाती रहे। हलचल के बिना जीवन सूना और नीरस हो जाता है।

कठिनाइयों से भय मानना अंतर में छिपी कायरता का द्योतक है। अपनी इस कायरता के कारण ही मार्ग में आई हुई कठिनाई पहाड़ के समान दुरूह मालूम होती हैं किंतु जब उस कठिनाई को दूर करने के लिए साहसपूर्वक जुट पड़ा जाता है तो यह विदित होते देर नहीं लगती कि जिस कठिनाई को हम पर्वत के समान दुर्गम समझ रहे थे, वह उस बादल के समान हीन अस्तित्व थी जो थोड़ी-सी हवा लगने पर टुकड़े-टुकड़े होकर छितरा जाता है।

सफलता को आसान समझकर उसकी कामना करने वाले व्यक्ति प्रौढ़ बुद्धि के नहीं माने जा सकते। सफलता की उपलब्धि सरलता से नहीं कठोर संघर्ष से ही संभव होती है। अध्ययन, अध्यवसाय और अनुभव की साधना किए बिना अभीष्ट सफलता को पा सकने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपने को योग्य बनाकर पूरे संकल्प के साथ लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा। मार्ग में आने वाली बाधाओं का,

यह मानकर स्वागत करना होगा कि वे हमारे साहस, निश्चय और संकल्प की परीक्षा लेने आई हैं। कठिनाइयों को देखकर भयभीत होने के स्थान पर उन्हें दूर करने के लिए जी-जान से जुट जाना होगा। इस प्रकार पूरे समारोह और साहस के साथ लक्ष्य की ओर अभियान करने पर सफलता की आशा की जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसा अदम्य उत्साह और उद्योग की क्षमता प्रकट करने वाले पुरुषार्थी के गले में जयमाला पड़ती ही है और वे समाज द्वारा अभिवंदित होकर उन्नति के उच्च सिंहासन पर अभिषेक के अधिकारी बनते हैं।

सफलता की सिद्धि मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। जो व्यक्ति अपने इस अधिकार की उपेक्षा करके यथा-तथा जी लेने में ही संतोष मानते हैं, वे इस महा-मूल्य मानव जीवन का अवमूल्यन कर एक ऐसे सुअवसर को खो देते हैं, जिसका दुबारा मिल सकना संदिग्ध है। अस्तु उठिए और आज से ही अपनी वांछित सफलता को वरण करने के लिए उद्योग में जुट पड़िए।

❐ ❐

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा